हम ऐसी बनें!

माइल ख़ैराबादी

अनुवादक

कौसर लईक़

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

अल्लाह के नाम से जो बड़ा ही दयावान और कृपाशील है।

दो बातें

इनसान कभी किसी की ज़बान से नसीहत की बात सुनकर उसे क़बूल कर लेता है और नेकी की राह पर लग जाता है। कभी ऐसा भी होता है कि कोई किसी का लिखा हुआ लेख पढ़कर मुतास्सिर होता है और अपनी बिगड़ी हुई ज़िन्दगी को बदल देता है। ये दोनों प्रकार के इनसान बड़े अच्छे ख़यालात के कहलाते हैं। अच्छी बात क़बूल करने की सलाहियतें उनमें सारे इनसानों से ज़्यादा होती हैं। लेकिन—

अच्छी बात क़बूल करने का एक ज़रिया और भी है, वह यह कि चाहे ज़बान से कुछ न कहा जाए, क़लम से कुछ न लिखा जाए, लेकिन अच्छी बातों और अच्छे अख़लाक़ का नमूना सामने आ जाए, साथ ही इनसानियत की चलती-फिरती तस्वीरों में वह समा जाए तो यह नमूना उन दोनों तरीक़ों से ज़्यादा असरदार होता है।

इस तरह के नमूने औरतों और छात्राओं की मासिक पत्रिका 'हिजाब' (उर्दू) में क़िस्तवार कुछ साल पहले छपते रहे, जो बहुत मक़बूल हुए। बाद में इन नमूनों को एक पुस्तक का रूप दे दिया गया। यह पुस्तक 'मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी' से उर्दू में छपती रही है। अब हम इसका हिन्दी अनुवाद अपने हिन्दी पढ़नेवालों की ख़िदमत में पेश कर रहे हैं, उम्मीद है पसंद की जाएगी। पढ़नेवाले इन चलती-फिरती ज़िन्दा तस्वीरों को देखकर पुकार उठेंगे कि हमें भी ऐसा बनना चाहिए। इन नमूनों को हम इनसानियत का अनमोल तोहफ़ा समझते हैं। इनसानियत के उसूलों में सबसे ऊँची बात यह है कि इनसान हक़ और सच्चाई को जहाँ देखे, बिना किसी झिझक के क़बूल कर ले। हमारे नज़दीक दुनिया में इस्लाम से बढ़कर कोई सच्चाई नहीं। इतना ही नहीं, बल्कि हक़ यही है और इसके सिवा जो कुछ है, सब झूठ है। क़ुरआन में है कि अल्लाह के नज़दीक सच्चा दीन 'इस्लाम' है और वह अपने बन्दों को दीने इस्लाम देकर उनसे राज़ी हो गया। इसलिए हम सबसे पहले औरतों और छात्राओं के लिए उन्हीं के कुछ ऐसे पाकीज़ा नमूने पेश कर रहे हैं, जिनके सामने जैसे ही इस्लाम की सच्चाई स्पष्ट हुई, बिना किसी झिझक के उन्होंने बढ़कर उसे क़बूल कर लिया। उर्दू के मशहूर लेखक 'माइल ख़ैराबादी' साहब ने इन पाकीज़ा नमूनों को तलाश करके एक जगह तरतीब दिया है। लेखक का क़लम आपका जाना-पहचाना क़लम है। इसलिए यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि इस किताब की ज़बान कैसी आसान और कितनी सलोनी होगी, वह तो आप ख़ुद पढ़कर फ़ैसला कर लेंगे। हाँ, अगर इन नमूनों को देखकर औरतों के अन्दर अपने को सँवारने-सुधारने की स्पिरिट पैदा हो गई तो हमारी मेहनत कामयाब है और यही इस किताब के छापने का मक़सद भी है। अल्लाह तआला हमें, आपको इस मक़सद को हासिल करने की तौफ़ीक़ दे! आमीन !!

—प्रकाशक

इस्लाम क़बूल करने के नमूने

हज़रत ख़दीजा (रज़ि०)

हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की बीवी थीं। वे उम्र में आपसे पन्द्रह साल बड़ी थीं। आपसे शादी करने से पहले उनकी दो शादियाँ हो चुकी थीं। दोनों बार विधवा हो गईं। उन दोनों शौहरों से औलाद भी थी। आप मक्के की बहुत मालदार औरत थीं। जब हुज़ूर (सल्ल०) नबी हुए तो आप (सल्ल०) की उम्र चालीस साल की थी और हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) पचपन साल की थीं। पचपन साल की उम्र वह उम्र होती है जब इनसान भले-बुरे पर ज़्यादा ग़ौर करने लगता है— ऐसा करने से कहीं ऐसा न हो, फ़लाँ नेक काम में धन-दौलत ख़र्च हो जाए तो बुढ़ापे में परेशानी का सामना करना पड़े, अपने भी बाल-बच्चे हैं, उनकी ज़रूरतों के लिए भी तो कुछ बचा लिया जाए। सच पूछिए तो इस उम्र को पहुँचकर इनसान अपने लिए कम, अपने बाल-बच्चों के लिए ज़्यादा सोचता है।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) भी इसी तरह सोच सकती थीं। लेकिन जैसे ही नबी (सल्ल०) ने अल्लाह का दीन उनके सामने पेश किया, उन्होंने उसे क़बूल किया। सुनते ही कहा, "जो कुछ आपने फ़रमाया, सच फ़रमाया। आपकी इनसानियत को मैं देख चुकी हूँ। आपको नबी होना ही चाहिए और सचमुच अल्लाह एक है। उसी की इबादत करनी चाहिए।" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया भी कि मुझे जान का ख़तरा है। वे बोलीं— 'हरगिज़ नहीं; अल्लाह आपको कभी तबाह नहीं करेगा।' ख़दीजा (रज़ि०) ने इस अन्देशे को दिल में आने ही नहीं दिया कि व्यापार ठप्प होकर रह जाएगा। बाल-बच्चे भूखों मर सकते हैं।

एक नव मुस्लिम अंग्रेज़ ने हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के मुसलमान होने को हुज़ूर (सल्ल०) के नबी होने का सबसे बड़ा सबूत कहा है। बड़े पते की बात कहता है कि बीवी से ज़्यादा शौहर की कमज़ोरियाँ जाननेवाला दूसरा कोई नहीं हो सकता। ख़दीजा (रज़ि०) ने आप (सल्ल०) को नबी क़बूल कर लिया। इसका मतलब है कि वह पहले ही से आप को इनसानियत का मुकम्मल नमूना मान चुकी थीं।

बेशक! औरतें यह पढ़कर ख़ुश होंगी कि इस्लाम क़बूल करने के लिए सबसे पहले जो हस्ती आगे बढ़ी— वह एक औरत ही थी। हदीसों में है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"मैं सोमवार के दिन नबी हुआ, और ख़दीजा (रज़ि०) ने उसी दिन के आख़िरी हिस्से में पहली नमाज़ पढ़ी । अली (रज़ि०) ने दूसरे दिन, इसके बाद ज़ैद बिन हारिस और अबू बक्र (रज़ि०) ने ।"

यह हदीस पढ़कर अगर मुसलमान औरतें फ़ख़्र करें तो उनका फ़ख़्र करना जायज़ है ।

हज़रत सुमैया (रज़ि०) और उम्मे ऐमन (रज़ि०)

ये दोनों औरतें भी बूढ़ी थीं । उम्र जितनी ज़्यादा होती-जाती है, उतनी ही इनसान के अन्दर अक़ीदे की मज़बूती आती जाती है । लोग तो कहते हैं कि आख़िर उम्र में अक़ीदे का बदलना नामुमकिन हो जाता है और अगर असम्भव नहीं तो मुश्किल, बेहद मुश्किल ज़रूर होता है । समाज और समाज के रीति-रिवाज का लिहाज़ बढ़ जाता है । रिश्ते-नाते पाँव पकड़ते हैं, शर्म दामन थामती है । अगर कोई बड़ा आदमी हुआ तो ख़ैर कुछ देर व दूर से लोग बुरा-भला कहते हैं । लेकिन अगर कोई ग़रीब हुआ तो फिर सिर मुंडाते ही ओले पड़ने लगते हैं ।

हज़रत उम्मे ऐमन (रज़ि०) तो ख़ैर हुज़ूर (सल्ल०) की क़रीबी थीं, लेकिन हज़रत सुमैया (रज़ि०) लौंडी (ग़ुलाम औरत) थीं और वह भी किसकी ?— मक्के के सबसे बड़े रईस के घराने की, जिस घराने के लोग वे थे जो नबी (सल्ल०) के सबसे बुरे दुश्मन हो गए थे— जैसे अबू जहल ।

उस समय लौंडियों और ग़ुलामों की हैसियत जानवरों जैसी थी । ये लोग जानवरों की तरह ख़रीदे और बेचे जाते थे । उनकी मरज़ी कुछ नहीं थी और न ही उनकी अपनी कोई ख़्वाहिश । उनका काम बस यह था कि जानवरों की तरह मालिक की मरज़ी पर चलें । शाम को मालिक जो रुखी-सूखी खिला दे, वही खा लें ।

हज़रत सुमैया (रज़ि०) की यही ज़िन्दगी थी कि तौहीद (एकेश्वरवाद) की आवाज़ कानों में पड़ी । सुनते ही क़बूल कर लिया जैसे कि वे यह आवाज़ सुनने के लिए पहले से तैयार थीं । यह भी न सोचा कि अबू जह्ल आदि क्या दुर्गति बनाएँगे । शौहर और बेटे को साथ लिया और इस्लाम के क़दमों में जा गिरीं ।

इस्लाम की नज़र में उस आदमी का ईमान भरोसे के क़ाबिल नहीं जो इस्लाम की सच्चाई को दिल में लिए बैठा रहे । इस्लाम यह चाहता है कि इनसान खुल्लम-खुल्ला कहे कि मैं मुसलमान हूँ । हुज़ूर (सल्ल०) के बुज़ुर्ग चचा अब्बास (रज़ि०) ने एक मौक़े पर अर्ज़ किया कि मैं तो पहले से मुसलमान हूँ, एलान अब कर रहा हूँ । आप (सल्ल०) ने उनका वह इस्लाम क़बूल न किया जो एलान से पहले

दिल में था ।

हज़रत सुमैया (रज़ि०) इसमें भी पूरी उतरीं । इस्लाम क़बूल करने के बाद खुलकर एलान कर दिया कि ख़ुदा का शुक्र है कि मैं मुसलमान हूँ और मेरे साथ मेरा शौहर यासिर और बेटा अम्मार भी मुसलमान हैं ।

मुसलमान औरतों के लिए ख़ुश होने और फ़ख़्र करने का फिर मौक़ा है । रिवायतों में आता है कि सबसे पहले जिन सात बुज़ुर्गों ने अपने मुसलमान होने का एलान किया उनमें एक ग़रीब सहाबिया, अम्मार (रज़ि०) की माँ, हज़रत सुमैया (रज़ि०) भी थीं ।

दूसरी औरतें

दिल तो यही चाहता है कि कम ही सही, लेकिन उन पाकीज़ा औरतों का नाम ले-लेकर उनके इस्लाम क़बूलने का हाल बयान कर दिया जाए । लेकिन उनकी सूची इतनी लम्बी है कि इस छोटी-सी किताब में समेटा नहीं जा सकता । बस यह समझ लीजिए कि कम उम्र, जवान, अधेड़ और बूढ़ी सहाबियात औरतों की एक बड़ी तादाद है जिसने सहाबा के साथ-साथ इस्लाम क़बूल किया । उनमें लौंडियाँ, दासियाँ, ग़रीब, रईस, राजकुमारियाँ हर तबक़े की पाकीज़ा औरतें नज़र आती हैं । मुसलमान होते समय उन सबको ख़तरा हो सकता था कि बाप नाराज़ हो जाएगा, माँ नाराज़ हो जाएगी, भाई दुश्मन हो जाएगा, शौहर तलाक़ दे देगा और वे उस ऐशो आराम से महरूम हो जाएँगी, जो उन्हें हासिल था । लेकिन उन्होंने हर ख़तरे और अन्देशे को दिल से निकाल दिया और हक़ की आवाज़ सुनते ही मुसलमान हो गईं । उन्होंने बाप के सामने, भाई के आगे, शौहर के रू-बरू, मालिक के सामने अपने इस्लाम क़बूल करने का एलान कर दिया । उनमें सुमैया (रज़ि०) की तरह ज़ुनैरा (रज़ि०) और लुब्निया (रज़ि०) जैसी दासियाँ और लौंडियाँ थीं । अस्मा (रज़ि०), हफ़्सा (रज़ि०), उम्मे सलमा (रज़ि०) और उम्मे हबीबा (रज़ि०) जैसी रईसज़ादियाँ भी थीं । इस्लाम क़बूल करने के बाद उनपर क्या बीती और उन कमज़ोर जानों ने किस तरह उस वक़्त के अबू जहलों से मुक़ाबला किया, यह सबक़आमोज़ दास्तान आगे पढ़िए ।

इस्लाम क़बूल करने के बाद

इस्लाम क़बूल करने के बाद उन नर्म व नाज़ुक जानों पर क्या बीती ? यह एक दिल हिला देनेवाली, दर्द-भरी कहानी है, और फिर किस तरह वे अपने इस्लाम पर पूरे यक़ीन के साथ अड़ी रहीं । यह सब हमारे ईमान को ताज़ा करनेवाले वाक़िआत हैं । आज जबकि चारों तरफ़ से इस्लाम और मुसलमानों पर हमले हो रहे हैं, ये एक बेहतरीन नमूना है, जो अपने हाल की ज़बान से कह रही हैं कि अगर इन हालतों में घिर जाओ तो ऐसे बनो या ऐसी बनो । इसलिए उन नमूनों की कुछ झलकियाँ नीचे की लाइनों में दिखाई जा रही हैं । उनको देखने के लिए भी बड़े सब्र और बरदाश्त की ज़रूरत है । हम मौलाना मुहम्मद अली 'जौहर' मरहूम के इस शेर के साथ उनपर ढाए गए ज़ुल्मों और उनको झेलनेवालियों का हाल बयान करते हैं । 'जौहर' मरहूम फ़रमाते हैं—

यह शहादत गहे उलफ़त में क़दम रखना है ।
लोग आसान समझते हैं मुसलमाँ होना ॥

हज़रत सुमैया (रज़ि०)

हज़रत सुमैया (रज़ि०) मक्के के सबसे ज़्यादा ज़िद्दी रईस के घर की लौंडी थीं । मक्के के रईस बड़े-बड़े लोगों के मुसलमान हो जाने पर उनको सताने से न चूकते थे । उनके घर की लौंडी मुसलमान हो जाए, यह कैसे सहन कर सकते थे । फिर यह कि मशहूर कट्टर काफ़िर अबू जह्ल उसी ख़ानदान से था । उसने सुना तो आपे से बाहर हो गया । उसके दोस्तों ने कहा कि मज़ा तो जब है कि उस लौंडी को वापस अपने धर्म में ले आओ । अबू जह्ल यही इरादा करके चला । यार-दोस्त साथ थे । अब सुमैया (रज़ि०) को तरह-तरह के दुख पहुँचाए जाने लगे । सताते वक़्त पूरा जत्था साथ होता । यह जत्था अबू जह्ल पर हँसता । ज़ालिम अबू जह्ल झुंझलाता । आख़िर एक दिन उसने सुमैया को भारी अज़ाब में डाल दिया । मक्का की तपती रेत में दोपहर को ज़िरह पहनाकर हज़रत सुमैया (रज़ि०) को खड़ा कर दिया । इस पर भी वह इस्लाम से न फिरीं तो धूप में उसी गर्म रेत पर लिटा दिया । फिर भी वह इस्लाम पर जमी रहीं तो अबू जह्ल ने झुंझलाकर बरछी फेंक मारी । वह बरछी हज़रत सुमैया (रज़ि०) की नाभि के नीचे जा लगी, जिससे वह शहीद हो गईं । 'इन्नालिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन'

(बेशक हम अल्लाह के हैं और उसी की तरफ़ लौटकर जानेवाले हैं)। यह नेमत औरत ही के हिस्से में आई है कि सबसे पहले एक औरत (हज़रत ख़दीजा रज़ि०) मुसलमान हुई और सबसे पहले एक औरत (हज़रत सुमैया रज़ि०) ने शहादत का शर्फ़ हासिल किया।

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०)

कौन फ़ातिमा ? हज़रत उमर (रज़ि०) की बहन फ़ातिमा। इस्लाम क़बूल करने से पहले हज़रत उमर (रज़ि०) इस्लाम की दुश्मनी में अबू जह्ल से कम न थे। फिर मक्के के रईसों में जाने-माने रईस थे। उन्हें मालूम हुआ कि बहन और बहनोई मुसलमान हो गए हैं। फिर क्या था, ग़ुस्से में भरे हुए बहन के घर गए। दोनों को इतना मारा कि लहूलुहान कर दिया। लेकिन बहन यही कहती रही कि 'उमर! जो कुछ करना है कर लो। अब मैं मुसलमान हो चुकी। मैं इस्लाम की सच्चाई से इनकार नहीं कर सकती।' इतिहास की किताबों में लिखा है कि उमर जैसा पहाड़ जब अपनी बहन फ़ातिमा जैसी चट्टान से टकराया तो ख़ुद चूर-चूर हो गया। नतीजा यह निकला कि बहन ही की बदौलत उन्हें इस्लाम की दौलत हासिल हुई।

लुबनिया (रज़ि०) और ज़ुनैरा (रज़ि०)

हज़रत लुबनिया (रज़ि०) उमर (रज़ि०) की लौंडी थीं। ये जब मुसलमान हुईं तो हज़रत उमर (रज़ि०) उनको हमेशा पीटते रहते। वे जब पीटते-पीटते थक जाते तो हाथ रोक लेते और कहते कि रहम की बिना पर मैंने हाथ नहीं रोका हैं, बल्कि थक गया हूँ, सुस्ता कर फिर पीटूँगा। इसी तरह दूसरी लौंडी ज़ुनैरा (रज़ि०) को पीटते थे। लेकिन दो कमज़ोर औरतों में से किसी को भी इस्लाम से फेर न सके, बल्कि ख़ुद इस्लाम के क़दमों में जा गिरे।

उम्मे शुरैक (रज़ि०)

हज़रत उम्मे शुरैक (रज़ि०) मुसलमान हुईं तो उनके रिश्तेदारों ने उनको इस्लाम से फेरने के लिए नया तरीक़ा अपनाया। उनको धूप में ले जाकर खड़ा कर देते, और प्यास लगती तो पानी न देते, इसका नतीजा यह होता कि उनका दिल खौलने लगता। ऐसी हालत में वह कभी-कभी बेहोश हो जातीं, उनसे कुछ कहा जाता तो समझ न पातीं। उनके रिश्तेदार उनसे इस्लाम छोड़ने को कहते तो वह कुछ न समझतीं। फिर जब उँगली का इशारा आसमान की ओर करते तो वे समझतीं कि आसमानवाले की वहदानियत (एक होने) से इनकार कराया जा रहा है। जवाब

देतीं कि 'ख़ुदा की क़सम ! वह तो एक ही है और उसका कोई साझीदार नहीं ।'

उम्मे हबीबा[1] (रज़ि०) का ईमान

इन रईसों की बेटियों में सबसे आला दर्जे की एक औरत उम्मे हबीबा (रज़ि०) थीं । उम्मे हबीबा (रज़ि०) का तारुफ़ शायद इतना ही काफ़ी है कि वे मक्के के सबसे बड़े दौलतमंद उत्बा की बहू, दूसरे बड़े रईस अबू सुफ़ियान की बेटी और तीसरे रईस उबैदुल्लाह बिन जहश की बीवी थीं । ख़ानदान के दूसरे रईसों की बेटियाँ हज़रत उम्मे सलमा और असमा वग़ैरह साथ थीं । हबशा पहुँचकर उम्मे हबीबा (रज़ि०) के शौहर उबैदुल्लाह ने इस्लाम छोड़कर ईसाई-धर्म अपना लिया ।

यह समय बड़ा नाज़ुक था और जाननेवाले जानते हैं कि आज भी ऐसा समय बड़ा ही नाज़ुक होता है । बेटा बाप से जुदा होकर ज़िन्दगी बसर कर लेता है । लेकिन बीवी अपने शौहर से अलग होकर क्या करे ? यह सवाल बड़ा भयानक बनकर बीवी के सामने आता है । लेकिन उम्मे हबीबा (रज़ि०) ने इस्लाम से फिरे हुए शौहर को ठुकरा दिया । इस्लाम पर जमी रहीं । इसे कहते हैं 'ईमान' का मज़बूत होना, इसे कहते हैं पक्का इरादा और इस्लाम पर जमना !

---

1. उम्मे हबीबा (रज़ि०) वह पाक ख़ातून हैं कि जब उनके बारे में नबी (सल्ल०) को मालूम हुआ तो हज़रत उमैया बिन ज़मीरी (रज़ि०) को अपना नुमांइदा बनाकर हबशा भेजा । हज़रत उमैया बिन ज़मीरी (रज़ि०) ने हबशा के बादशाह नज्जाशी के ज़रिए हुज़ूर (सल्ल०) के निकाह का पैग़ाम उम्मे हबीबा (रज़ि०) को दिया । उम्मे हबीबा (रज़ि०) ने ख़ुशी-ख़ुशी मंज़ूर कर लिया और फिर नज्जाशी उनकी तरफ़ से वली (संरक्षक) हुआ और उसने ही उम्मे हबीबा को हुज़ूर (सल्ल०) के अक़्द में दिया । आज दुनिया के सारे मुसलमान जब इस बुज़ुर्ग औरत का नाम लेते हैं तो कहते हैं—'उम्मुल मोमिनीन हज़रत उम्मे हबीबा (रज़ि०)' । यह इज़्ज़त उन्हें दुनिया में मिली कि क़ियामत तक होनेवाले सारे मुसलमानों की माँ हैं । आख़िरत में जो बदला मिलेगा उसे कोई सोच भी नहीं सकता ।

इस्लाम की हिमायत

हिमायत का मतलब है— 'मदद करना', 'तरफ़दारी करना', पक्ष लेना; चाहे वह ज़बान से की जाए या क़लम से, माल से की जाए या जान से ।

पाकीज़ा औरतों के पाकीज़ा नमूनों में हमारे सामने ऐसी मिसालें हैं जिन्हें देखकर हम यह कह सकते हैं कि इस्लाम की हिमायत में औरतों ने मर्दों से कम हिस्सा नहीं लिया । कुछ नमूने तो ऐसे देखे जा सकते हैं कि उनकी मिसाल मर्दों में भी नहीं मिलती । उदाहरण के रूप में हम कुछ नमूने पेश करते हैं, जिनके बारे में ख़ुद नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि ये और ये औरतें फ़लाँ-फ़लाँ मौक़ों पर मर्दों से आगे निकल गईं ।

इस्लामी आन्दोलन की इब्तिदाई आज़माइशों में जब इस्लाम का दम भरनेवालों पर बर्दाश्त न होनेवाले ज़ुल्मो सितम ढाए जाते थे, तीन बुज़ुर्ग इस्लाम की हिमायत में पेश-पेश नज़र आते हैं । उनमें से एक हुज़ूर के चचा जनाब अबू तालिब थे । उन बुज़ुर्ग के बारे में आप कह सकते हैं कि उन्होंने अपने बाप जनाब अब्दुल मुत्तलिब से वादा किया था कि भतीजे की परवरिश करेंगे । चूँकि अरबवासी वादे के पक्के होते थे, इसलिए उन्होने उम्र भर अपने वादे को निभाया । आपने भतीजे की उस समय हिमायत की जब मक्के के तमाम बड़े-बड़े सरदारों ने आकर कहा—"तुम्हारा भतीजा हमारे बुतों को बुरा कहता है । तुम उसे मना करो कि वह हमारे ख़ुदाओं को ज़लील न करे, या तुम बीच से हट जाओ, हम उससे निपट लेंगे ।"

उस समय तमाम क़ुरैशी सरदार ख़फ़ा थे । बड़ा नाज़ुक समय था, लेकिन अबू तालिब ने क़ुरैशी सरदारों और उनके ग़ुस्से की परवाह नहीं की । हुज़ूर (सल्ल०) से साफ़-साफ़ कह दिया— "भतीजे ! तू अपना काम जारी रख, ये लोग तेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते ।"

अबू तालिब का यह जुमला पूरी क़ौम को एक तरह का चैलेंज था । इस चैलेंज को क़ौम ने किस तरह क़बूल किया और अबू तालिब ने अस्सी वर्ष की उम्र में उसका सामना किस तरह किया, इसका ज़िक्र हम आगे हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की हिमायत के सिलसिले में बयान करेंगे ।

दूसरे बुज़ुर्ग जो इस्लाम की हिमायत में अपना सब कुछ निछावर कर रहे थे, वे हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) थे । वे अपनी ज़बान की पूरी ताक़त से

इस्लाम और इस्लाम लानेवालों की हिमायत करते थे और साथ ही माल से भी उनकी मदद करते थे । इस्लामी इतिहास लिखनेवालों ने उनकी इस्लामी ख़िदमातों की बड़ी तारीफ़ की है । इसमें शक नहीं कि वे इस तारीफ़ से ज़्यादा के हक़दार हैं । ख़ुद नबी (सल्ल०) ने उनकी सहायता को तसलीम किया । आपने फ़रमाया है कि इस्लाम को जितना फ़ायदा अबू बक्र से पहुँचा उतना किसी से नहीं पहुँचा ।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि०)

अबू तालिब और अबू बक्र (रजि०) के कारनामे वे कारनामे हैं, जो ज़ाहिर और नुमायाँ हैं । उनके मुक़ाबले में जिस हस्ती की हिमायत दूध में घी की तरह शामिल रही, वह बुज़ुर्ग हस्ती हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की थी । दूध में घी किसी को नज़र नहीं आता, मगर दूध में होता ज़रूर है । दूध में सारी ताक़त इसी की होती है । यही हाल हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की हिमायत और मदद का था । औरत होने की हैसियत से उनकी हिमायत उस स्रोत की तरह थी जो ज़मीन के अन्दर होता है और अन्दर ही अन्दर पेड़ की जड़ को ताक़त देता रहता है । वह पेड़ को हरा-भरा रखता है । हालाँकि वह किसी को नज़र नहीं आता । मौक़ा नहीं कि यहाँ हम सभी वाक़िआत बयान कर सकें, फिर भी कुछ अहम बात बयान करते हैं । आज हमारी माएँ और बहनें इन घटनाओं को पढ़ें और सबक़ हासिल करें और देखें कि क्या वे ऐसा नहीं कर सकतीं ?

जिस वक़्त अल्लाह ने आप (सल्ल०) को नबी बनाया उस वक़्त आप (सल्ल०) तीन हैसियतों से बहुत व्यस्त थे । एक तरफ़ हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के व्यापार की ज़िम्मेदारी आप (सल्ल०) पर थी । दूसरी तरफ़ ख़ुदा का इनकार करनेवालों के माहौल में बच्चों की तरबियत का मसला था । ख़याल रहे कि हज़रत अली (रज़ि०) जो उस वक़्त नाबालिग़ थे, वे भी आप के साथ रहते थे । तीसरी तरफ़ अल्लाह की तरफ़ से इस्लाम फैलाने की ज़िम्मेदारी आप पर थी ।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ने देखा कि इस्लामी तहरीक की ज़िम्मेदारी हुज़ूर (सल्ल०) के सिर पर आई तो उन्होंने घर की सारी ज़िम्मेदारी (अन्दर-बाहर की) अपने कन्धों पर ले ली । छोटे-बड़े बच्चों की देखभाल, उनकी परवरिश, उनकी तरबियत और घर के बन्दोबस्त से हुज़ूर (सल्ल०) को बिलकुल आज़ाद कर दिया । हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की इस मदद और हिमायत ने हुज़ूर (सल्ल०) को बड़ी ताक़त बख़्शी । आप यकसू होकर इस्लाम की तबलीग़ में लग गए । हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) का वह व्यापार जो हुज़ूर (सल्ल०) की मेहनत और कारगुज़ारियों से अपनी बुलन्दी को छू रहा था, एकदम ठप्प होकर रह गया । हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ने हुज़ूर

(सल्ल०) से पूछा तक नहीं कि हमारे व्यापार का क्या हुआ ? पूछा तो यह पूछा कि आज मक्का के सरदारों से कैसी बनी ? आपका मिज़ाज कैसा है ? आज दीन का क्या-क्या काम हुआ ? वग़ैरह-वग़ैरह ।

ज़बान की इस हिमायत का लुत्फ़ उस शख़्स से पूछिए जो दिन भर का थका-हारा घर पहुँचकर बीवी की एक नज़र का उम्मीदवार होता है । उधर से वह भी नसीब न हो तो फिर उस ग़रीब का जो हाल होता है, वह लफ़्ज़ो में बयान नहीं किया जा सकता ।

मैंने इतिहास का मुताला किया है और मेरा ईमान यह है कि सारी तारीफ़ अल्लाह के लिए है, और वह अपने फ़ज़ल से जो चाहे और जिसे चाहे दे दे और सब कुछ उसी की तरफ़ से होता है । मुझे मालूम है कि एक सबसे बड़ी ताक़त—'ऐ कपड़े में लिपटनेवाले' और 'ऐ चादर में लिपटनेवाले' लफ़्ज़ो से पुकार-पुकारकर अपनी हिमायत के करिश्में दिखा रही थी । लेकिन ज़ाहिरी असबाब की दुनिया में किसी झिझक के बिना यह कह सकता हूँ कि अगर अल्लाह तआला हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) को आपकी हिमायत पर न खड़ा कर देता तो इस्लामी तहरीक के इबतिदाई मरहले ऐसे रौशन और ताबनाक न होते जैसा हम देख रहे हैं ।

इस्लामी तहरीक के शुरू ज़माने मे अबू तालिब की ख़िदमत सबसे ऊँची ख़िदमत है । दावत और तबलीग़ और हिमायते इस्लाम में हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) की ज़िन्दगी ख़ुद अपनी मिसाल आप है । लेकिन औरत-ज़ात के इस अज़ीम नमूने का सानी भी कहीं नज़र नहीं आता । हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ने अपने हाथों से हुज़ूर (सल्ल०) के दिल के ज़ख़्मों पर जो ठण्डा मरहम रखा, वह न जनाब अबू तालिब के बस का था, न हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ही इसे पेश कर सकते थे । दुनिया जानती है कि दिन भर की बातें इनसान रात को सोते वक़्त सोचता है । उस वक़्त हमदम और दोस्त बीवी के सिवा कौन होता है, जो तसल्ली देता है । 'मदारिजुनबूवत' जिल्द -2 में है—

> "क़ुरैश जब आपकी नुबूवत को झुठलाते तो जो रंज आप को होता और आप के दिल को जो सदमा पहुँचता, वह हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के पास आकर, उनको देखकर दूर हो जाता और आप ख़ुश हो जाते । जब आप फ़रमाते कि क़ुरैश ने यह और यह कहा और यूँ सताया तो वे ज़बान की पूरी ताक़त से आपकी रिसालत की तस्दीक़ करतीं और क़ुरैश के मामले को आपके सामने ऐसा हलका करके पेश करतीं कि आपके दिल का बोझ उतर जाता और आप दूसरे दिन के लिए फिर ताज़ादम हो जाते ।"

आज आप भी अपने ऐसे शौहर की इसी तरह मदद कर सकतीं हैं जो अल्लाह का दीन फैलाने में लगा हो । उस के दिल पर आज भी ऐसे चरके लगते हैं, बीवी चाहे तो उन चरकों का असर ख़त्म कर दे और अगर चाहे तो उन चरकों को ज़ख़्म बना दे ।

इस्लाम की हिमायत का यह अध्याय एक ही औरत के ज़िक्र से लम्बा हुआ जा रहा है । इसलिए मैं सिर्फ़ एक वाक़िआ के बाद दूसरी पाकीज़ा औरतों के नूमने पेश करूँगा ।

इस्लामी तहरीक की सहायता में मक्के के काफ़िरों को वह हाथ तो नज़र न आया था जो ग़ैब से हुज़ूर (सल्ल०) की मदद कर रहा था । लेकिन अबू तालिब, अबू बक्र (रज़ि०) और ख़दीजा (रज़ि०) की हिमायत को वे देखते थे । वे ग़ैबी हाथों से तो पंजा नहीं लड़ा सकते थे, लेकिन उनकी इन तीनों बुज़ुर्गों को दबाने की खुली और छिपी हर तरह की कोशिशें नाकाम हो गईं । वे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को दीन की दावत से न रोक सके और न इन तीनों बुज़ुर्गों को आप से जुदा कर सके । आख़िर उन्होंने एक उपाय सामाजिक बायकाट के रूप में किया । सबने मिलकर एक समझौता किया कि जब तक हाशमी ख़ानदान के लोग इस्लामी तहरीक के रहनुमा को क़त्ल करने के लिए हमारे हवाले न करेंगे, उनसे रिश्ता-नाता, लेन-देन, मिलना-जुलना, ख़रीदना-बेचना और तमाम इनसानी ताल्लुक़ात ख़त्म ।

यह समझौता लिखकर काबे के दरवाज़े पर लटका दिया गया । अब हाशिम के घराने को मक्का में रहना नामुमकिन दिखाई देने लगा । जनाब अबू तालिब ने मजबूर होकर हाशिमी घराने को साथ लिया, मक्के से ज़रा दूर अपने पहाड़ी दर्रे में चले गए । यह दर्रा शेबे अबी तालिब के नाम से मशहूर था । क़ुरैशी सरदारों का अनुमान था कि इस तरह अबू बक्र (रज़ि०) नबी (सल्ल०) से अलग, बाहर रह जाएँगे और उन्हें आसानी से दबाया जा सकेगा । ख़दीजा (रज़ि०) भी अलग होकर अपने ख़ानदान में जा रहेंगी, मुहम्मद (सल्ल०) को सिर्फ़ एक ऐसे व्यक्ति अबू तालिब की मदद ही हासिल रहेगी जो स्वयं मुसलमान नहीं हुआ है और सिर्फ बाप से किए हुए वादे को निभा रहा है, और अब वह अस्सी साल के ऊपर है । मक्का के सरदारों को अपनी कामयाबी का पूरा यक़ीन था ।

ऐसी सूरत में हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने 'शेबे अबी तालिब' से बाहर रहकर क्या कारनामा अंजाम दिया ? यह उल्लेख हम उस लेखक को सौंपते हैं जो हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) की फ़ज़ीलत के बारे में लिखे या फिर अल्लाह हमें ही तौफ़ीक़ दे । इस वक़्त तो हम यह दिखाना चाहते हैं कि उस नाज़ुक वक़्त में एक औरत ने क्या पार्ट अदा किया, जबकि उसकी उम्र साठ साल से ऊपर

हो चुकी थी ।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) चाहतीं तो उस वक़्त इस्लामी तहरीक की मदद छोड़ कर क़ौम की नज़र में इज़्ज़तदार और ऊँचा हो जातीं । लेकिन उस बहादुर बूढ़ी मोमिना औरत ने इस्लाम की हिमायत और मदद में क़ौम को ठुकरा दिया । उस इज़्ज़तदार हस्ती को मालूम था कि अगर इस समय अल्लाह के नबी (सल्ल०) का साथ न दिया तो ख़ुदा जाने इस्लामी तहरीक का क्या बने । इसलिए वे भी अबू तालिब के साथ उनके दर्रे में चली गईं । काफ़िरों ने नाकाबन्दी कर दी कि कोई चीज़ अन्दर न जा सके और न कोई शख़्स दर्रे से बाहर निकलकर कुछ ख़रीद सके ।

यह सामाजिक बायकाट पूरे तीन साल रहा । तीन साल की इस मुद्दत में उन ग़रीबों पर क्या-क्या बीती ? यह बयान करने के लिए न हमारे क़लम में ताक़त है और न हम अपने अन्दर ही इतनी सकत पाते हैं । दर्रे के अन्दर बूढ़े भी थे, जवान भी थे, बच्चे भी थे, औरतें भी थीं, लड़कियाँ भी थीं और बीमार भी थे । इनसान अपनी ज़ात तक तो फ़िदाकारी के बड़े-बड़े जौहर दिखा सकता है, लेकिन फ़िदाकारी का यह मेयार क़ायम रखना नामुमकिन नहीं तो मुश्किल ज़रूर है कि आँखों के सामने मासूम और नन्हें बच्चे भूख के मारे रोएँ और तड़पें और माएँ कुछ न कर सकें । माओं की छातियों का दूध सूख चुका हो और दूध पीनेवाला बच्चा उनकी छातियों को नोचे । फिर यह कि औरत ज़ात को पैदा करनेवाले ने वैसे भी नर्म दिल बनाया है । कुछ नहीं सोचा जा सकता कि उस वक़्त दर्रे में घिरी हुई माओं ने कैसे उन बच्चों को सम्भाला होगा । बयान करनेवालों ने बयान किया है कि कहीं चमड़े का सूखा टुकड़ा मिल गया, उसे उठा लाए, भिगोया और बारी-बारी से चूसकर पेट की भूख को धोखा दिया । मगर ग़ौर कीजिए इससे पेट भरेगा या उसकी आग और भड़केगी !

हम उन बेबस और बेसहारों का हाल लिखकर पढ़नेवालों को रुलाना नहीं चाहते । हम तो यह दिखाना चाहते हैं कि ऐसी हालत में भी हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) का किरदार निहायत बुलन्द रहा । अब वे यह सोच रही थीं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) किस तरह आज़ाद हों, जिसके दम से यह इस्लामी तहरीक जुड़ी है ।

इस सामाजिक बायकाट के ज़माने में कुछ वाक़िआत ऐसे भी मिलते हैं, जिनसे मालूम होता है कि घिरे हुए उन लोगों को दो-एक बार बाहर से मदद मिल गई । मगर जब हमने इस मदद की खोजबीन की तो मालूम हुआ कि इसमें हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) का बुलन्द किरदार ही काम कर रहा था । वाक़िआ इस तरह है कि हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के भतीजे हकीम बिन हज़्ज़ाम ने अपने ग़ुलाम के ज़रिए फूफी

के लिए गेहूँ भेजा । ग़ुलाम, लोगों की नज़रों से बचकर जा रहा था । लेकिन अबू जह्ल शैतानी नज़र रखता था, उसने देख लिया और शोर मचा दिया । ग़ुलाम वफ़ादार था । उसने चाहा कि बचकर अन्दर चला जाए, तभी अबू जह्ल ने पकड़ लिया और गेहूँ छीनने लगा । हाथापाई होने लगी । इतने में मक्का का एक सरदार अबुल बख़तरी आ गया । वह नेक दिल था । बोला— 'एक इनसान अपनी फूफी के लिए खाने की कोई चीज़ भेजता है, तू रोकनेवाला कौन है ? फिर अपनी बात पर ऐसा जम गया कि अबू जह्ल को रास्ते से हटना पड़ा और सामान फूफी के पास पहुँच गया ।

बायकाट के तीन सालों में न जाने कितनी घटनाएँ हुईं और यह बायकाट किस तरह ख़त्म हुआ । आगे आप को मालूम हो जाएगा कि इसको भी ख़त्म कराने में हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ने ही काम किया ।

यह तो आप को मालूम ही है कि हुज़ूर (सल्ल०) के साथ निकाह होने से पहले उनकी दो बार शादी हो चुकी थी । दोनों शौहरों से सिर्फ़ एक बच्ची थी, उसका नाम 'हिन्द' था । हिन्द, अपनी माँ, हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के साथ उसी घेराव के अन्दर थी । उस बच्ची का मामूँ हिशाम मख़ज़ूमी अपने ख़ानदान के रईस ज़ुबैर से मिला । यह ज़ुबैर अबू तालिब का भाँजा था । हिशाम ने ज़ुबैर को धिक्कारा कि शर्म नहीं आती ! तुम अपने मुँह में निवाला कैसे उतारते हो, जबकि तुम्हारे मामूँ को इस बुढ़ापे में एक दाना भी नसीब नहीं होता ।

ज़ुबैर का दिल भी पहले से भरा बैठा था । यह तंज़ सुनकर तड़प उठा । बोला— "क्या करूँ ? मजबूर हूँ, अकेला हूँ । अगर एक आदमी भी मेरा साथ देने को तैयार हो जाए तो मैं इस ज़ालिमाना समझौते को नोच कर फेंक दूँ ।" यह सुनकर हिशाम ने हामी भरी । फिर ये दोनों मक्का के शरीफ़ लोगों के पास गए । उनमें से तीन आदमी और मिल गए । ये पाँचों काबा में पहुँचे । ज़ुबैर ने क़ुरैश को पुकारा— "लोगो ! यह कैसा इनसाफ़ है कि सब तो आराम से खाएँ-पिएँ और हाशिम के ख़ानदानवाले दाने-दाने को तरसें । ख़ुदा की क़सम ! जब तक यह ज़ालिमाना समझौता फाड़कर फेंका न जाएगा, उस समय तक हम ख़ामोश नहीं बैठेंगे ।" यह सुनते ही दूसरी तरफ़ से अबू जह्ल बोला— "कोई इस समझौते को हाथ नहीं लगा सकता ।" ज़ुबैर के साथी ज़मआ ने जवाब दिया— "तू झूठा है ।" ज़ुबैर ने कहा, "जब यह समझौता लिखा जा रहा था, उस वक़्त भी हम राज़ी न थे ।"

बातचीत में गरमागरमी शुरू ही हुई थी और भीड़ अभी ज़्यादा जमा नहीं हुई थी कि ज़ुबैर के तरफ़दार मुतइम बिन अदी ने हाथ बढ़ाकर समझौतानामा नोच

लिया और फाड़कर फेंक दिया। इसके बाद ये पाँचों हथियार सजाकर घाटी में गए, घिरे हुए लोगों को बाहर लाए। उस वक़्त हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की उम्र साठ साल से ऊपर थी और जनाब अबू तालिब पचासी के क़रीब थे। तीन साल के बायकाट में दो सबसे ज़्यादा बूढ़ों की ज़िन्दगी ने जवाब दे दिया। अबू तालिब और हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) इतने कमज़ोर हो गए थे कि फिर सम्भल न सके। आगे-पीछे अल्लाह को प्यारे हो गए। इस्लामी तहरीक दो बड़े सहारों से महरूम हो गई। इसका सदमा हुज़ूर (सल्ल०) को इतना ज़्यादा था कि आप फ़रमाया करते, "जिस साल अबू तालिब और ख़दीजा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हुआ, वह मेरे लिए ग़म का साल था।"

अबू तालिब और हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के दुनिया से उठ जाने से क़ुरैश की हिम्मत और बढ़ गई। अबू लहब भी शेर हो गया। वे सारे वाक़िआत उन दोनों बुज़ुर्गों की वफ़ात के बाद ही के हैं जिनमें बयान हुआ है कि हुज़ूर (सल्ल०) की राह में काँटे बिछा दिए जाते थे। आपके गले में चादर डालकर खींचा जाता था। क़ुरआन लानेवाले फ़रिश्ते जिबरील (अलै०) को गालियाँ दी जाती थीं। तायफ़ के ज़ुल्म भी बाद के हैं।

उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाया करती थीं, "अपनी सौतनों में से मुर्दा सौतन पर मुझे बड़ा रश्क आता है।" हुज़ूर (सल्ल०) हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) को ऐसे शब्दों में याद किया करते थे कि मैं तड़प उठती थी कि काश! ये शब्द मेरे हिस्से में आते। एक बार मैंने कह भी दिया— "आप क्या एक बूढ़ी औरत को याद करते हैं। अल्लाह ने उससे बेहतर बीवियाँ आपको दी हैं।"

यह सुनकर हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया— "ख़ुदा की क़सम! नहीं, हरगिज़ नहीं। ख़ुदा ने उनसे बेहतर बीवी मुझे नहीं दी। ख़दीजा (रज़ि०) उस वक़्त मुझ पर ईमान लाई जब लोग मुझे झुठलाते थे और उन्होंने उस वक़्त अपना माल मुझे दिया जब लोग मुझे माल देने के लिए तैयार न थे और जब मेरा कोई हामी और मददगार न था, उस वक़्त उन्होंने मेरी मदद की।"

हज़रत उम्मे अम्मारा (रज़ि०)

इस्लाम की हिमायत के सिलसिले में ज़रूरी है कि उनके ख़ानदान के बारे में कुछ बता दिया जाए। क्योंकि हज़रत उम्मे अम्मारा (रज़ि०) अपने ख़ानदान के साथ हर ऐसे वक़्त में इस्लाम की मदद के लिए जान-माल के साथ उठ खड़ी होती थीं, जब इस्लाम पर दुश्मनों का हमला होता था।

हज़रत उम्मे अम्मारा (रज़ि०) अंसारिया (मदीने के मददगारों में से) थीं । मदीने के उस अंसार ख़ानदान से संबंध रखती थीं जो 'ख़ज़रज' के नाम से मशहूर है । उनकी शादी अपने चचेरे भाई ज़ैद बिन आसिम के साथ हुई थी । उनसे दो बेटे हुए । एक का नाम अब्दुल्लाह था और दूसरे का हबीब । ज़ैद के बाद अरबा बिन उमर (रज़ि०) से निकाह हुआ । उनसे भी दो बेटे हुए— एक तमीम, दूसरे ख़ौला । हज़रत उम्मे अम्मारा (रज़ि०) के ये चारों बेटे हर वक़्त इस्लाम की मदद के लिए तैयार रहते थे । अब नमूने देखिए—

जंगे उहुद इस्लामी इतिहास में बहुत मशहूर है । यह मदीने से तीन-चार किलोमीटर दूर उहुद के मैदान में मक्के के काफ़िरों से लड़ी गई थी । काफ़िर बड़े साज़ो सामान से आए थे । इस लड़ाई में मुसलमानों की एक ग़लती से बड़ा नाज़ुक मौक़ा आ गया था । इस्लाम का झण्डा उठानेवाले हज़रत मुसअब बिन उमैर (रज़ि०) और मशहूर जाँबाज़ मुजाहिद हज़रत हमज़ा (रज़ि०) अचानक शहीद हो गए । हुज़ूर (सल्ल०) तनहा रह गए । मुसलमान तितर-बितर हो गए । अब काफ़िरों का ज़्यादातर झुकाव नबी (सल्ल०) की तरफ़ था । ऐसे नाज़ुक वक़्त में हुज़ूर (सल्ल०) तक कभी दो और कभी आठ-दस जाँबाज़ ही पहुँच सके थे । इन जाँबाज़ों में हज़रत उम्मे अम्मारा (रज़ि०), उनके शौहर अरबा (रज़ि०) और दो बेटे अब्दुल्लाह और हबीब भी थे ।

लड़ाई के शुरू में तो हज़रत उम्मे अम्मारा (रज़ि०) पानी का मशक कांधे पर लादे हुए दौड़-दौड़कर मुजाहिदों को पानी पिला रही थीं । फिर जब हुज़ूर (सल्ल०) पर दुश्मनों का हमला हुआ तो हज़रत उम्मे अम्मारा (रज़ि०) ने मशक कांधे पर से उतारकर फेंक दी और तलवार थाम ली । वे दुश्मनों पर पिल पड़ीं और लड़ते-लड़ते हुज़ूर के पास पहुँच गईं । इस जंग का हाल देखनेवालों ने उस वक़्त का जो नक़्शा खींचा है, वह इस तरह है । कहते हैं—

हज़रत उम्मे अम्मारा (रज़ि०) का हाल यह था कि जैसे शमा के गिर्द परवाना चक्कर लगाता है उसी तरह हुज़ूर (सल्ल०) के आस-पास फिर रही थीं । दुश्मन जब हुज़ूर (सल्ल०) पर हमला करते तो उनके वार कभी अपनी तलवार से काटतीं और कभी ढाल पर रोकती थीं । बेटों को समझा दिया था कि जब मैं दुश्मन के वार को रोकूँ तो तुम पीछे से दुश्मन के घोड़े की कूँचें काट देना । चुनांचे ऐसा ही होता कि इस तदबीर से जब सवार ज़मीन पर गिरता तो माँ-बेटे मिलकर उसका ख़ात्मा कर देते । कभी ऐसा भी होता कि ख़ुद ही दुश्मन का वार रोकतीं और फिर झपटकर उसके घोड़े पर वार करतीं । ठीक उसी वक़्त हुज़ूर (सल्ल०) उनके बेटे अब्दुल्लाह को आवाज़ देते, वह झपटकर आते और दुश्मन ज़मीन पर ढेर

पड़ा होता ।

इसी लड़ाई में एक मौक़े पर एक ताक़तवर दुश्मन इब्ने क़ुमैया तलवार लेकर हुज़ूर (सल्ल०) की तरफ़ बढ़ा । वह अभी पास नहीं पहुँचा था कि किसी दुश्मन ने हुज़ूर (सल्ल०) पर पत्थर फेंककर मारा । उससे हुज़ूर (सल्ल०) के दो दाँत शहीद हो गए । इसके बाद इब्ने क़ुमैया की तलवार हुज़ूर (सल्ल०) के कवच के कुन्दे पर पड़ी । कुन्दे हुज़ूर (सल्ल०) के गाल में धँस गए और ख़ून बहने लगा । उम्मे अम्मारा (रज़ि०) हुज़ूर (सल्ल०) का यह हाल देखकर बेचैन हो गईं । उन्होंने बढ़कर इब्ने क़ुमैया पर तलवार का वार किया । मगर वह लोहे का कवच पहने हुए था । तलवार ने काम नहीं किया । उसने पलटकर उम्मे अम्मारा (रज़ि०) पर वार किया तो उसकी तलवार उनके कंधे पर पड़ी और गहरा ज़ख़्म आया । उन्होंने ज़ख़्म की परवाह नहीं की । चाहा कि फिर वार करें कि वह भाग खड़ा हुआ । उम्मे अम्मारा (रज़ि०) ख़ून में नहा गईं । हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़ौरन पट्टी बंधवाई । जिन सहाबा (हुज़ूर के साथियों) ने इस मौक़े पर जान पर खेलकर आपको बचाया था आप (सल्ल०) ने उनका नाम लेकर फ़रमाया—

> "ख़ुदा की क़सम ! आज उम्मे अम्मारा (रज़ि०) इस्लाम की हिमायत में सबसे बढ़ गईं ।"

इसी लड़ाई में हुज़ूर (सल्ल०) की ज़बाने मुबारक से ये शब्द सुने गए— "मैं तो उहुद की लड़ाई में अपने दाएँ-बाएँ उम्मे अम्मारा ही को लड़ते देखता था ।" इस लड़ाई में एक बार उनके बहादुर सपूत अब्दुल्लाह (रज़ि०) घायल होकर गिर गए तो माँ ने बढ़कर ज़ख़्म पर पट्टी बाँधी और कहा— "इस्लाम की मदद में उठ, बढ़ और काफ़िरों से लड़ ।" हुज़ूर (सल्ल०) ने यह सुना तो फ़रमाया— "ऐ उम्मे अम्मारा (रज़ि०) ! जितनी शक्ति तुझमें है, वह दूसरे में कहाँ ?"

आम तौर पर देखा जाता है कि इस्लाम की हिमायत और मदद में कारगुज़ारी दिखाते-दिखाते जोश ठण्डा पड़ जाता है । यह हमारा रोज़ाना का तजुर्बा और अनुभव है । लेकिन यह भी एक सच है कि हज़रत उम्मे अम्मारा (रज़ि०) मरते दम तक फ़िदाकारी के जौहर दिखाती रहीं । हुदैबिया, हुनैन और ख़ैबर की लड़ाइयों में भी पेश-पेश रहीं । रसूल (सल्ल०) के दौर के बाद 'जंगे यमामा' में ऐसी लड़ीं कि उहुद की याद ताज़ा कर दी ।

इसका क़िस्सा यह है कि हुज़ूर (सल्ल०) के बाद यमामावालों में से एक बहादुर आदमी मुसैलमा ने नुबूवत (नबी होने) का दावा किया और अपने लिए हिमायती जमा करने लगा । उसके क़बीले के चालीस हज़ार बहादुर उसके साथ हो गए ।

अब वह ताक़त के ज़ोर पर अपनी नुबूवत मनवाने लगा । उन्हीं दिनों में उम्मे अम्मारा (रज़ि०) के प्यारे बेटे हज़रत हबीब (रज़ि०) अम्मान गए हुए थे । वे वापस आ रहे थे । रास्ते में मुसैलमा के हाथ लग गए । उसने अपनी हिमायत में लेने की कोशिश की । उन्होंने 'ला हौल' पढ़ी । हुज़ूर (सल्ल०) की नुबूवत का इक़रार किया और उसकी नुबूवत को झुठलाया । उसने झुंझलाकर उनका एक हाथ कटवा दिया और फिर अपनी हिमायत के लिए कहा । हबीब (रज़ि०) ने फिर 'ला हौल' पढ़ी और उसे झुठलाया । उसने दूसरा हाथ भी कटवा दिया । यह सिलसिला चलता रहा । यहाँ तक कि उसने उनके हर इनकार पर बदन का एक-एक टुकड़ा काटते-काटते तिक्का-बोटी कर दिया ।

यह दर्दनाक ख़बर माँ को हुई । माँ ने क़सम खाई कि अगर मुसलमानों ने मुसैलमा पर चढ़ाई की तो इस ज़ालिम को अपनी तलवार से जहन्नम पहुँचाएँगी । इसलिए जब हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने हज़रत ख़ालिद बिन वलीद (रज़ि०) को चालीस हज़ार सेना देकर यमामा की तरफ़ भेजा, तो हज़रत उम्मे अम्मारा ने अपने बेटे अब्दुल्लाह को साथ लिया और पहले ख़लीफ़ा की इजाज़त से सेना के साथ चल दीं ।

यमामा की जंग में उम्मे अम्मारा (रज़ि०) ने शुरू ही से मुसैलमा को ताक लिया था । हमला हुआ तो बेटे को इशारा किया । अपनी बरछी और तलवार से कतारें चीरती और घाव पर घाव खाती हुई मुसैलमा की ओर बढ़ीं । यहाँ तक कि उसके करीब पहुँच गईं । हमला करना चाहती थीं कि अचानक सामने से किसी ने मुसैलमा को नेज़ा मारा और एक तरफ़ से किसी की तलवार उस पर पड़ी । पलटकर देखा तो अब्दुल्लाह अपनी तलवार का ख़ून पोंछ रहे थे । पूछा— "बेटे ! तूने ही मारा ।" हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) ने जवाब दिया, "अम्मी ! इस झूठे पर इधर से मैंने तलवार मारी और सामने से हज़रत वहशी ने नेज़ा मारा । अब मालूम नहीं कि उसे क़त्ल करने का सौभाग्य मुझे मिला या वहशी को ।"

यह सुनकर उम्मे अम्मारा (रज़ि०) बहुत ख़ुश हुईं, अल्लाह का शुक्र अदा किया । इस लड़ाई में उम्मे अम्मारा (रज़ि०) ने बड़ी गहरी चोटें खाई थीं । एक हाथ भी कटकर गिर गया था । ख़ालिद बिन वलीद (रज़ि०) उनकी खिदमात को इज़्ज़त की नज़र से देखते थे, उन्होंने बड़ी तवज्जोह से इलाज कराया । वह अच्छी हो गईं । ख़ालिद बिन वलीद (रज़ि०) के बारे में उनकी राय है कि वह बड़े हमदर्द अफ़सर, बड़ी अच्छी तबीअत के सेनापति और बड़े ही नम्र और नेक मिज़ाज के सरदार हैं ।

इस्लाम की हिमायत का नमूना फिर ऐसा देखने में न आया । हज़रत उमर (रज़ि०)

की ख़िलाफ़त के ज़माने में एक बार कहीं से माले गनीमत (जंग में दुश्मन से प्राप्त माल) आया । इसमें एक कपड़ा बड़ा ही क़ीमती था । उस पर सुनहरा काम था । लोगों का अनुमान था कि हज़रत उमर (रज़ि०) यह कपड़ा या तो अपने बेटे अब्दुल्लाह को देंगे या उम्मे कुलसूम (रज़ि०) को । उम्मे कुलसूम (रज़ि०) हज़रत अली (रज़ि०) की बेटी थीं । अब्दुल्लाह (रज़ि०) और उम्मे कुलसूम (रज़ि०) की पाकीज़गी की कोई मिसाल न थी । लेकिन हज़रत उमर (रज़ि०) ने कहा— "मैं यह कपड़ा उसे दूँगा जो इसका सबसे ज़्यादा हक़दार है ।" यह कपड़ा उम्मे अम्मारा (रज़ि०) को दिया गया और हज़रत उमर (रज़ि०) ने कहा, "मैंने नबी करीम (सल्ल०) से उहुद के दिन सुना था, हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया था कि उहुद के दिन मैं जिधर देखता था उम्मे अम्मारा (रज़ि०) ही इस्लाम की हिमायत में आगे-आगे थीं ।" इसके कुछ दिनों बाद उम्मे अम्मारा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हो गया । अल्लाह हमें भी ऐसी क़िस्मत दे कि हम भी इस्लाम की हिमायत में जान व माल कुरबान कर सकें ।

दूसरी औरतें

इस्लाम की हिमायत में ऐसे ही मौक़ों पर दूसरी पाकीज़ा औरतें भी तन-मन-धन निछावर किए रहती थीं । ख़ंदक़ की लड़ाई में हज़रत सफ़िया (रज़ि०) ने आगे बढ़कर एक दुश्मन जासूस पर ख़ेमे का खम्बा इस ज़ोर से मारा कि वह साँस भी न ले सका । ख़ैबर की लड़ाई में नबी (सल्ल०) ने कुछ औरतों को इस्लाम की हिमायत में खड़े देखा तो नाराज़ होकर फ़रमाया— "तुम किसके साथ और किसकी इजाज़त से आईं ?" जवाब मिला— "ऐ अल्लाह के रसूल! हम ऊन कातते हैं और उससे इस्लाम की मदद करते हैं । हमारे साथ इलाज का सामान है । हम मुजाहिदीन को तीर उठा-उठाकर देते हैं और सत्तू घोलकर पिलाते हैं । हम सब इस्लाम की मदद के लिए आए हैं ।"

हज़रत उम्मे अतिया (रज़ि०) हुज़ूर (सल्ल०) के साथ सात लड़ाइयों में शामिल हुईं । वे मुजाहिदीन के सामान की निगरानी करती थीं । खाना पकातीं और घायलों की मरहम-पट्टी करती थीं ।

हज़रत आइशा (रज़ि०), उम्मे सुलैत (रज़ि०) और उम्मे सुलैम (रज़ि०) को जंगे उहुद में देखा गया कि वे मशक कांधों पर लादे दौड़-दौड़कर मुजाहिदीन को पानी पिला रही थीं । उम्मे सुलैम (रज़ि०) अपने साथ ख़ंजर भी रखती थीं । हुनैन की जंग में हुज़ूर (सल्ल०) ने उनको हाथ में ख़ंजर लिए जोश के साथ खड़े देखा तो पूछा— "यह क्या ?" अर्ज़ किया— "जो दुश्मन इधर बढ़ेगा, पेट फाड़ दूँगी ।"

हज़रत रफ़ीदा (रज़ि०) ने मस्जिदे नबवी में ख़ेमा खड़ा कर रखा था । जो लोग जख़्मी होकर आते थे उनका इलाज इसी ख़ेमे में करती थीं ।

हज़रत असमा बिन्ते अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) बचपन से इस्लाम की हिमायत में आगे-आगे रहीं । नबी (सल्ल०) ने जब हिजरत की तो वे आप (सल्ल०) की राज़दार थीं । उन्होंने ही खाना बाँधकर पेश किया था । ग़ारे सौर (सौर पर्वत की गुफ़ा) में खाना देने ऐसी तरकीब से जातीं कि दुश्मनों को पता भी न चलता था । बुढ़ापे में जब उनके बेटे अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि०) ने यज़ीद से टक्कर ली और आख़री वक़्त में माँ से राय लेने गए तो हज़रत अस्मा ने जो कुछ कहा वह सुनिए—

> "ऐ मेरे बेटे ! तुम अपनी भलाई को ख़ुद ही अच्छी तरह समझते हो । अगर तुम्हें इस्लाम की हिमायत में हक़ पर होने का यक़ीन है तो तुम्हें अपने इरादे पर अटल रहना चाहिए । तुम मर्दों की तरह लड़ो और जान के डर से किसी ज़िल्लत की परवाह न करो । इज़्ज़त के साथ तलवार खाना, ज़िल्लत के सुख से लाख गुना बेहतर है । अगर तुम शहीद हो गए तो मुझे ख़ुशी होगी और अगर तुम इस मिट जानेवाली दुनिया के पुजारी निकले तो तुमसे ज़्यादा बुरा कोई नहीं कि ख़ुद भी तबाही में पड़े और अल्लाह के बन्दों को भी तबाही में डाला । अगर तुम यह समझो कि अकेले रह गए हो और अब अपने को हवाले करने के अलावा कोई चारा नहीं तो यह भले लोगों का तरीक़ा नहीं । तुम कब तक जिओगे ? बहरहाल एक न एक दिन तो मरना है । इसलिए अच्छा यही है कि इस्लाम की हिमायत में नेकनाम होकर मरो; ताकि मैं फ़ख़्र कर सकूँ ।"

हज़रत ख़नसा (रज़ि०) अरब की मशहूर मर्सिया कहनेवाली शायरा थीं । उनके चार बेटे थे । वे इस्लाम की हिमायत में चारों बेटों को लेकर जंगे क़ादसिया में शामिल हुईं । फिर जब घमासान की लड़ाई शुरू हुई तो देखिए किस जोश के साथ बेटों को इस्लाम की हिमायत के लिए जान देने पर उभार रही हैं । फ़रमाती हैं—

> "मेरे प्यारे बेटो ! तुम अपनी ख़ुशी से मुसलमान हुए और अपनी मरज़ी से तुमने हिजरत की । क़सम है उस हमेशा रहनेवाले ख़ुदा की, जिसके सिवा कोई माबूद (पूज्य) नहीं । जिस तरह तुम सिर्फ़ अपनी एक माँ के पेट से पैदा हुए उसी तरह तुम अपने एक ही सगे बाप के बेटे हो । मैंने तुम्हारे बाप से ख़यानत नहीं की और न तुम्हारे मामूँ को रुसवा किया । तुम्हारा ख़ानदान बेदाग़ है और तुम्हारे ख़ानदान में कोई ऐब नहीं ।

ऐ बेटो ! तुम जानते हो कि मुसलमानों के लिए अल्लाह की तरफ़ से जिहाद करने का बड़ा सवाब है, क्योंकि इसमें जान देकर इस्लाम की हिमायत की जाती है । तुम अच्छी तरह जान लो और ख़ूब समझ लो कि हमेशा रहनेवाली आख़िरत के मुक़ाबले में मिट जानेवाली दुनिया कुछ भी नहीं । क़ुरआन में ख़ुदा कहता है—

"मुसलमानो ! उन तकलीफ़ों को जो इस्लाम की हिमायत और अल्लाह की राह में पेश आएँ, सहन करो और एक-दूसरे को जमे रहने की नसीहत करो और आपस में मिलकर रहो, और अल्लाह से डरो ताकि (आख़िरत में) तुम अपनी मुराद को पहुँचो ।"

तो ऐ बेटो ! जब तुम देखो कि घमासान जंग होने लगे और जंग के शोले भड़कने लगें और उसके अंगारे लड़ाई के मैदान में बिखर गए, तो दुश्मन की फ़ौजों में घुस जाओ और बेधड़क तलवार चलाओ और अल्लाह से मदद और कामयाबी की दुआ करते रहो । अल्लाह ने चाहा तो आख़िरत के दिन इज़्ज़त और बुलंदी पाओगे और कामयाब होगे ।"

हमारी बहनें कह सकती हैं कि आजकल ऐसे मौक़े कहाँ आते हैं । फिर हमारी तरबियत इस तरह हुई कि हम लड़ाई में हिस्सा नहीं ले सकतीं । लेकिन प्यारी बहनो ! इस सिलसिले में सिर्फ़ यही तो नहीं है और भी बहुत कुछ है— आप अपने बच्चों को इस्लाम की हिमायत के लिए उभार सकती हैं । दूसरे ज़रियों से भी इस्लाम की मदद कर सकती हैं । प्यारी बहनो ! अपनी ज़बान को इस्लाम की हिमायत और मदद में खोलो । अपने माल से इस्लाम की मदद करो अपने शौहर को इस्लाम की हिमायत में उभारकर खड़ा कर दो ।



औलाद की तरबियत

आमतौर से लोग अपनी औलाद को उसी बात की तालीम और तरबियत देते हैं जिसको वे ख़ुद पसन्द करते हैं । अगर उन्हें यह पसन्द होता है कि औलाद कामयाब व्यापारी बने तो उसे व्यापार के गुर बताते हैं और उसी रास्ते पर शुरू से डाल देते हैं । इसी तरह अगर कोई यह चाहता है कि औलाद इल्म में शोहरत हासिल करे तो वह अपनी औलाद की तरबियत के लिए वे सारे ज़रिये काम में लाता है, जिनसे औलाद को इल्म हासिल करने में आसानी हो । जिन पाकीज़ा औरतों का ज़िक्र हम इन पन्नों में कर रहे हैं, वे भी अपनी औलाद को उसी बात की तरबियत और तालीम देती थीं, जो उनको हर चीज़ से अधिक पसन्द थी । लेकिन यह देखिए कि उन पाकीज़ा औरतों को सबसे ज़्यादा क्या बात पसन्द थी ?

उन पाकीज़ा औरतों के सामने कोई ऐसी ख़्वाहिश न थी जिसको हासिल करके उनकी औलाद मुल्क की सबसे बड़ी व्यापारी या मालदार हो जाए या कोई दुनियावी ताक़त हासिल करे ।

वे तो सिर्फ़ यह चाहती थीं कि उनकी औलाद अल्लाह की मरज़ी के साँचे में ढल जाए । उनकी औलाद इस्लाम के काम आ सके । अल्लाह के आख़िरी रसूल (सल्ल०) की मुहब्बत में तन-मन-धन न्योछावर कर सके । चुनाँचे हमारे सामने ऐसे बहुत-से नमूने हैं जिनमें से कुछ पेश किए जा रहे हैं—

हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के घर अपनी औलाद में चार बेटियाँ नबी (सल्ल०) से थीं और पिछले दो शौहरों से एक बेटी और एक बेटा था । इन छः बेटे-बेटियों के साथ हज़रत अली (रज़ि०) भी हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के साथ रहते थे । ध्यान रहे कि जब हुज़ूर (सल्ल०) ने हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) से शादी की थी तो अपने चचा अबू तालिब से अलग रहने लगे थे । चूँकि अबू तालिब के बाल-बच्चे ज़्यादा थे, इसलिए एक बेटे हज़रत अली (रज़ि०) को अपने साथ रख लिया था । हज़रत अली (रज़ि०) उस वक़्त पाँच साल के थे । हज़रत अली (रज़ि०) की परवरिश और देखभाल के बारे में एक लेखक ने किस मज़े की बात लिखी है । लिखता है—

> "नबी करीम (सल्ल०) को नुबूवत की ज़िम्मेदारियों ने ऐसा मसरूफ़ कर रखा था कि आपको घर और बाल-बच्चों की देखभाल के लिए वक़्त नहीं मिलता था । वह हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ही थीं जो घर को

बनाए हुए थीं और हुज़ूर (सल्ल०) से जो इशारे पाती थीं, उन्हीं के मुताबिक़ बाल-बच्चों की परवरिश कर रही थीं । पाँच साल के अली को हज़रत अली (रज़ि०) बनाने में अगर एक तरफ़ अल्लाह की रहमत काम कर रही थी तो दूसरी तरफ़ ख़दीजा (रज़ि०) का भी हाथ था ।''

हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के सामने उस वक़्त सबसे बड़ा काम यह था कि उनके जीते-जी ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) को मक्का के क़ुरैश हानि न पहुँचाएँ । चुनाँचे औलाद के दिलो दिमाग़ में सबसे अधिक जो चीज़ भर दी थी, वह था रसूल (सल्ल०) की हिमायत का जज़्बा । हम देखते हैं कि हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की 6–7 साल की बच्ची (बीबी फ़ातिमा) ने जब सुना कि हुज़ूर (सल्ल०) के ऊपर काबा के अन्दर काफ़िरों ने ऊँट की ओझ डाल दी है तो दौड़ती हुई पहुँचीं, आपके ऊपर से ओझ हटाई और काफ़िरों को बुरी तरह लताड़ा ।

फिर हम देखते हैं कि एक बार जब हुज़ूर (सल्ल०) को दुश्मनों ने घेर लिया तो हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के पहले शौहर के बेटे 'हाला' जो नौजवान थे, दौड़कर गए और आपको बचाने लगे । हाला के पहुँच जाने से यह तो हुआ कि हुज़ूर (सल्ल०) बच गए, लेकिन इस फ़िदाकार पर कुछ ऐसी चोटें पड़ीं कि ज़िन्दगी से हाथ धो बैठे ।

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०), वही बीबी फ़ातिमा जिनके बचपन का कारनामा ऊपर बयान किया गया है, बड़ी हुईं तो हज़रत अली (रज़ि०) से निकाह हुआ । आप से जो औलादें हुईं, उनमें हसन और हुसैन (रज़ि०) ज़िन्दा रहे और उन्होंने दीन की जो ख़िदमत अंजाम दी, सभी जानते हैं । ये दोनों हज़रात ऐसे कैसे बने इसकी एक झलक पेश है—

हसन, हुसैन दोनों भाई छोटे थे तो एक बार खेल ही खेल में लड़ पड़े । फिर दोनों माँ के पास शिकायत करने गए । हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) ने दोनों की शिकायतें सुनीं, फिर कहा— ''मैं यह कुछ सुनना नहीं चाहती कि हसन ने हुसैन को पीटा या हुसैन ने हसन को । मैं तो सिर्फ़ यह जानती हूँ कि तुम दोनों लड़े और लड़ाई अल्लाह को पसन्द नहीं । तुम दोनों ने अल्लाह को नाराज़ किया । इसलिए जिससे अल्लाह नाराज़, उससे मैं भी नाराज़। चलो भागो यहाँ से ।

दोनों भाइयों ने माँ की नज़र देखी और झटपट आपस में मेल कर लिया और नन्हे-मुन्ने हाथ उठाकर अल्लाह से माफ़ी माँगी ।

कहने का मतलब यह है कि ये बड़ी हस्तियाँ जिनको हम अपने लिए नमूना समझते हैं, आपसे आप ऐसी नहीं बन गईं, उनको बनाने में उनकी माँओं ने उन्हें

हर वक़्त अपनी नज़र में रखा है और जिस जगह जब रोक-टोक की ज़रूरत समझी, उसी वक़्त रोक-टोक की ।

हज़रत अरवा बिन्ते अब्दुल मुत्तलिब हुज़ूर (सल्ल०) की फूफी थीं । इस्लाम के मशहूर दुश्मन अबू लहब की सगी बहन थीं । अबू लहब के करतूत उनके सामने थे । उन्होंने अपने बेटे हज़रत तुलैब की परवरिश इस अन्दाज़ से की कि वह अक्सर अबू लहब के आगे रोक बनकर खड़े हो जाते थे । एक बार अबू लहब ने हुज़ूर (सल्ल०) की शान में बड़ी गुस्ताख़ी की तो हज़रत तुलैब (रज़ि०) ने उसे पीटा और रस्सी से जकड़ दिया । अबू लहब ने बहन से भाँजे की शिकायत की तो बहन ने जवाब दिया, "भाई ! तूने मुझे आज जो ख़ुशख़बरी सुनाई इससे बढ़कर दूसरी ख़ुशख़बरी मेरे लिए नहीं हो सकती । तुलैब (रज़ि०) की ज़िन्दगी का वह लम्हा निहायत क़ीमती था, जब उसने तुझे पीटा और बाँध दिया ।"

फिर बेटे की तरफ़ देखा और कहा— "प्यारे बेटे ! तूने जिस आदमी की मदद की वह सबसे ज़्यादा उसका हक़दार था । अगर मर्दों की तरह मेरे लिए भी मुमकिन होता तो मैं भी नबी करीम (सल्ल०) की हिफ़ाज़त करती और आपकी तरफ़ से लड़ती। अगर तेरा माँमू फिर यह गुस्ताख़ी करे तो हरगिज़ माफ़ न करना ।"

उम्मे सुलैम (रज़ि०)

मदीने के अंसार में से जिन बुज़ुर्गों ने मुसलमान होने में पहल की, उनमें उम्मे सुलैम (रज़ि०) भी थीं । उनमें मुसलमान होने पर उनके शौहर मालिक बिन नज़र को बड़ा दुख हुआ । उनका एक बच्चा था । उम्मे सुलैम बच्चे को प्रतिदिन कलिमा पढ़ना सिखाती थीं । मालिक बिन नज़र सुनते तो ख़फ़ा होकर कहते कि तुम मेरे बच्चे को भी बेदीन किए देती हो । फिर वे ऐसे नाराज़ हुए कि 'शाम' चले गए और वहीं किसी ने उन्हें मार डाला । उम्मे सुलैम (रज़ि०) बेवा हो गईं तो सबसे ज़्यादा फ़िक्र यह थी कि बच्चे की बेहतरीन तरबियत हो सके ।

उम्मे सुलैम (रज़ि०) निहायत ख़ूबसूरत और मालदार औरत थीं । निकाह के लिए बहुत-से पैग़ाम आए, लेकिन उन्होंने यह कहकर इनकार कर दिया कि जब तक मेरा बच्चा मजलिसों में बैठने-उठने और बात करने के लायक़ न होगा, उस वक़्त तक शादी न करूँगी । फिर जब बेटा राज़ी होगा तो निकाह करूँगी ।

अल्लाह का फ़ज़्ल देखिए ! थोड़े ही दिनों बाद नबी (सल्ल०) मक्का मुअज़्ज़मा से हिजरत करके मदीना मुनव्वरा पहुँचे । उम्मे सुलैम (रज़ि०) अपने आठ साल के बेटे को लेकर आप (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और दरख़्वास्त की—

"ऐ अल्लाह के रसूल ! इस बच्चे को अपनी ख़िदमत के लिए अपने पास रख लें ।" हुज़ूर ने यह दरख़्वास्त क़बूल कर ली । आगे चलकर यही बच्चा हज़रत अनस के नाम से जाना-पहचाना गया । हज़रत अनस (रज़ि०) बहुत-सी हदीसों के रावी हैं । हज़रत अनस कहा करते थे कि अल्लाह तआला मेरी माँ को अच्छा बदला दे । उन्होंने मुझे बहुत ही अच्छा पाला-पोसा और तरबियत का हक़ अदा कर दिया ।

हज़रत अनस (रज़ि०) को हुज़ूर (सल्ल०) की ख़िदमत में देने के बाद भी वे उनकी देखभाल में कमी न करती थीं । एक बार हुज़ूर (सल्ल०) ने हज़रत अनस (रज़ि०) को किसी काम से कहीं भेजा और कहा कि किसी को बताना नहीं । इस काम में हज़रत अनस (रज़ि०) को देर हो गई । वापस हुए तो उम्मे सुलैम (रज़ि०) ने पूछा— "वह क्या काम था जिसमें इतनी देर हो गई ।" जवाब दिया, "नबी (सल्ल०) का एक काम था और वह आप (सल्ल०) का एक राज़ है, जो मैं हरगिज़ नहीं बताऊँगा ।" उम्मे सुलैम (रज़ि०) ने यह सुना तो बेटे को शाबाशी दी और कहा, "हरगिज़ न बताना, यह नबी (सल्ल०) का राज़ है ।"

ग़ौर कीजिए क्या हज़रत अनस (रज़ि०) जैसे बुज़ुर्ग बिना बुज़ुर्गों की मेहनत और ध्यान के ऐसे बन गए ? नहीं, अनस को हज़रत अनस (रज़ि०) बनाने में हुज़ूर (सल्ल०) की तवज्जोह तो थी ही, मगर माँ की तरबियत का भी बड़ा हिस्सा था ।

हज़रत उम्मे हानी (रज़ि०)

हज़रत उम्मे हानी मशहूर सहाबिया हुई हैं । हैरत होती है कि औलाद की परवरिश के लिए उन्होंने ऐसी नेमत क़बूल नहीं की, जिसे दूसरी औरतें हरगिज़ नहीं छोड़ सकती थीं । मज़े की बात यह है कि नबी (सल्ल०) ने हज़रत उम्मे हानी (रज़ि०) की फिर भी क़द्र फ़रमाई ।

उम्मे हानी (रज़ि०) जब बेवा हो गईं तो उनकी और उनके घराने की इस्लामी ख़िदमत की वजह से हुज़ूर (सल्ल०) ने उन्हें अपने निकाह में लेना चाहा । उन्होंने माफ़ी चाही और कहा— "ऐ अल्लाह के रसूल ! आप मुझे मेरी आँखों से ज़्यादा अज़ीज़ हैं, लेकिन शौहर का हक़ बहुत ज़्यादा है । इसलिए मुझे डर है कि अगर मैं शौहर का हक़ अदा करूँगी तो बच्चों की तरफ़ से बेपरवाई करनी पड़ेगी और अगर बच्चों की परवरिश में लगी रहूँगी तो शौहर का हक़ अदा न कर सकूँगी ।"

हुज़ूर (सल्ल०) ने उनका उज़्र सुना तो उनकी तारीफ़ फ़रमाई ।

इल्म सीखना

इल्म सीखने और उसके फैलाने के बारे में नबी करीम (सल्ल०) के हुक्म मौजूद हैं। आप (सल्ल०) ने शुरू ही से मुसलमानों को इल्म का शौक़ दिलाया है। अल्लाह की तरफ़ से जो आपंको मिलता रहा आप अल्लाह के बन्दों तक पहुँचाते रहे और ताकीद करते रहे कि उसे याद रखें। चुनाँचे सहाबा यानी आपके साथी और सहाबियात यानी औरतों के बारे में हम अच्छी तरह जानते हैं कि उन्होंने हुज़ूर (सल्ल०) से इल्म सीखने में कमी नहीं की और आप (सल्ल०) से जो इल्म मिला वह दूसरों तक पहुँचाया। शुरू ही का एक मशहूर वाक़िया है कि हज़रत उमर (रज़ि०) ने जब सुना कि उनके बहनोई ज़ैद (रज़ि०) और उनकी बहन फ़ातिमा (रज़ि०) दोनों मुसलमान हो गए हैं तो वे ग़ुस्से में उनके घर पहुँचे। उस वक़्त वे दोनों हज़रत ख़ब्बाब (रज़ि०) से क़ुरआन की आयतें याद कर रहे थे।

हज़रत आइशा (रज़ि०) अनसारी औरतों की तारीफ़ इस तरह करती हैं, "अनसार की औरतें बेहतरीन औरतें हैं। दीन का इल्म हासिल करने में शर्म उनके लिए रुकावट नहीं बनती।"

हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं, "हम शब्दों से ज़्यादा अस्ल इल्म को हासिल करने की ज़्यादा कोशिश करते थे।"

उम्मुल मोमिनीन कहती हैं—

> "नबी (सल्ल०) के ज़माने में जब कोई आयत नाज़िल होती थी तो हम उसमें बताए हुए हराम व हलाल और उन बातों को जिनके बारे में करने का आदेश होता था, और उन बातों को जिनसे मना कर दिया जाता था— याद कर लेते थे, चाहे उसके अल्फ़ाज़ (शब्द) याद न रहते।"

नबी (सल्ल०) को ख़ुद इस बात का ख़याल रहता था कि दीन का इल्म औरतों तक किसी न किसी तरह पहुँचना चाहिए। अतः आप (सल्ल०) औरतों को उभारते थे कि वे ईद और बक़रीद में ईदगाह जाया करें और वहाँ हुज़ूर (सल्ल०) का ख़ुतबा सुना करें।

हज़रत उम्मे अतिया (रज़ि०) फ़रमाती हैं—

> "बालिग़ और परदानशीन औरतों को ईदगाह चलना चाहिए चाहे वे

> ख़ास अय्याम से हों। वहाँ वे औरतें जो इस हालत में हों नमाज़ की जगह से अलग रहें, लेकिन ख़ैरात और मुसलमानों की दुआओं में शामिल हों।"

एक औरत ने हैरत से पूछा, "क्या वे औरतें भी जो पाक न हों ?" हज़रत उम्मे अतिया (रज़ि०) ने जवाब दिया, "हाँ, क्या वे अरफ़ात और फ़लाँ-फ़लाँ जगह हाज़िरी नहीं देतीं ?"

चूँकि हम लोगों में औरतें मर्दों से पीछे रहती थीं, इसलिए नबी (सल्ल०) उनको सुनाने के लिए अपनी आवाज़ बुलंद कर दिया करते थे। हज़रत ख़ौला बिन्ते क़ैस (रज़ि०) फ़रमाती हैं कि जुमा के दिन नबी (सल्ल०) का ख़ुतबा मैं अच्छी तरह सुन लिया करती थी, जबकि मैं औरतों में सबसे आख़िर में होती थी।

हुज़ूर (सल्ल०) को अगर महसूस होता कि आपकी बात औरतें अच्छी तरह नहीं समझ सकीं तो आप उनके क़रीब जाते, अपनी बात दोहराते। अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि०) कहते हैं—

> "नबी (सल्ल०) को ख़याल हुआ कि आप (सल्ल०) औरतों को अपनी बात नहीं सुना सके तो आपने दोबारा उनको नसीहत की और सदक़ा व ख़ैरात का हुक्म दिया।"

हुज़ूर (सल्ल०) नमाज़ में जो सूरा पढ़ा करते थे, औरतें वह सूरा आपकी ज़बान से सुन-सुनकर याद कर लिया करती थीं। बिन्ते हारिसा कहती हैं कि मैंने सूरा 'क़ाफ़' इसी तरह याद की।

क़ुरआन की तालीम और नबी (सल्ल०) की तरग़ीब ने औरतों के अन्दर इल्म की प्यास बढ़ा दी थी। यह महसूस करके कि ज़रूरत के मुताबिक़ औरतों को मौक़े नहीं मिल रहे हैं, नबी (सल्ल०) औरतों के ख़ास इजतिमा कराया करते थे। हज़रत अबू सईद ख़ुदरी कहते हैं—

औरतों ने नबी (सल्ल०) से कहा, "हुज़ूर के आसपास मर्द छाए रहते हैं इसलिए हम पूरा-पूरा फ़ायदा हासिल नहीं कर पाते, आप (सल्ल०) हमारे लिए एक अलग दिन तय कर दें।" हुज़ूर (सल्ल०) ने एक ख़ास दिन बता दिया और उस दिन वहाँ गए और नसीहत फ़रमाई और नेकियों का हुक्म दिया।

ऐसा भी होता कि हुज़ूर (सल्ल०) बुज़ुर्ग सहाबा में से किसी को औरतों के इजतिमा में भेज दिया करते थे। उम्मे अतिया (रज़ि०) हज़रत उमर (रज़ि०) के आने पर फ़रमाती हैं—

"उमर (रज़ि०) आए । उन्होंने दरवाज़े के पास खड़े होकर सलाम किया । हमने सलाम का जवाब दिया । उन्होंने कहा कि मुझे नबी (सल्ल०) ने तुम्हारे पास भेजा है । हुज़ूर (सल्ल०) ने हुक्म दिया है कि तुम औरतों में नौजवान और अय्यामवाली औरतों को भी ईदगाह ले चलो ।

और यह कि तुम पर जुमा फ़र्ज़ नहीं है, और यह कि हुज़ूर (सल्ल०) ने तुमको जनाज़ों के पीछे चलने से मना किया है, यानी जनाज़े में शामिल होने से रोका है ।"

यह सब कुछ होने के बाद भी औरतें घरेलू कामों की वजह से आमतौर से हुज़ूर (सल्ल०) के इजतिमा से महरूम रह जाती थीं । इसलिए नबी (सल्ल०) मर्दों को यह ताकीद किया करते थे कि— जाओ अपने बाल-बच्चों की तरफ़ और उन्हीं में रहो, और उनको दीन की बातें सिखाओ, उनपर अमल करने का हुक्म दो । अल्लाह फ़रमाता है—

"ऐ मुसलमानो ! अपने आपको और अपने घरवालों को जहन्नम की आग से बचाओ ।"

बीवी-बच्चों को दीन का इल्म सिखाने पर नबी (सल्ल०) ने बड़े सवाब का यक़ीन दिलाया है । बहुत-सी हदीसों से मालूम होता है कि बीवी-बच्चों को अच्छी तालीम व तरबियत देने का बदला 'जन्नत' है । एक हदीस बाप के बारे में है—

"जिसने तीन लड़कियों को पाला । उनको अदब और सलीक़ा सिखाया । उनकी शादी की । उनके साथ अच्छा सलूक किया, तो उसके लिए जन्नत लिख दी गई ।"

शौहर के बारे में कहा गया है–

"तीन प्रकार के आदमियों को दो गुना सवाब मिलेगा । उनमें से एक वह है जिसके पास कोई दासी हो और वह उसे अदब यानी अख़लाक़ सिखाए और अच्छा अदब सिखाए । तालीम दे और अच्छी तालीम दे, फिर उसको आज़ाद करके उससे शादी कर ले ।"

इस कोशिश का नतीजा यह निकला कि हुज़ूर (सल्ल०) के ज़माने ही में औरतों के अन्दर इल्म का शौक़ उभर आया था । औरतों में अक्सर औरतें ऐसी हुईं जो आला दर्जे की आलिमा और फ़ाज़िला थीं । उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा सिद्दीक़ा (रज़ि०) चूँकि हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) की बेटी और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की बीवी थीं, ख़ुद भी बेहद तेज़-दिमाग़ थीं, इसलिए उन्होंने वह कुछ हासिल

किया जिसका जवाब नहीं । बड़े-बड़े सहाबा यहाँ तक कि ख़ुद अबू बक्र और उमर (रज़ि०) इल्म में उनसे फ़ायदा उठाते थे । उनके बाद उम्मुल मोमिनीन हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि०) का नम्बर है ।

इन दो बुज़ुर्ग औरतों के बाद इन औरतों ने भी इल्म व फ़ज़्ल में ऊँचा मक़ाम हासिल किया—

हज़रत उम्मे अतिया (रज़ि०), हज़रत सफ़िया (रज़ि०), हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) हज़रत उम्मे हबीबा (रज़ि०), लैला बिन्ते वक़ाइफ़ (रज़ि०), हज़रत अस्मा (रज़ि०), हज़रत उम्मे शुरैक (रज़ि०), हज़रत ख़ौला (रज़ि०), हज़रत आतिका बिन्ते ज़ैद (रज़ि०), हज़रत सहला (रज़ि०), हज़रत फ़ातिमा बिन्ते क़ैस (रज़ि०) ।

इस सिलसिले में एक निहायत दिलचस्प और नसीहत से भरा हुआ वाक़िया लिखते हैं । इससे अन्दाज़ा हो जाएगा कि नबी (सल्ल०) से इल्म हासिल करने की कोशिश औरतें किस तरह करती थीं । और यह कि आपस में वह अपना इल्म बढ़ाने के लिए क्या उपाय करती थीं । इस घटना से यह भी साबित होगा कि पाकीज़ा औरतें अल्लाह की ख़ुशी हासिल करने में किस तरह दूसरे का मुक़ाबिला करती थीं । हम किताबों से वही हालात लेकर आज की बहनों के लिए पेश कर रहे हैं, जिनसे आज भी फ़ायदा उठाया जा सकता है ।

एक बार मदीने में औरतें इकट्ठा थीं । इस इजतिमा में यह ख़याल ज़ाहिर किया जा रहा था कि मर्द जिहाद करते हैं, जुमा की नमाज़ जमाअत से पढ़ते हैं, जनाज़े की नमाज़ में शामिल होते हैं । इस तरह की इबादतें हम औरतों पर फ़र्ज़ नहीं हैं, इसलिए हम उन बड़े-बड़े सवाब से महरूम हैं ।

इस सोच-विचार ने औरतों में बेचैनी पैदा कर दी । तय यह हुआ कि नबी (सल्ल०) से पूछना चाहिए कि सवाब में मर्दों के बराबर किस तरह हों ?

अब सवाल यह हुआ कि हममें कौन ऐसी औरत है जो हमारी नुमाइन्दगी ठीक ढंग से कर सके । सबने हज़रत अस्मा बिन्ते यज़ीद (रज़ि०) को अपना नुमाइन्दा बनाकर हुज़ूर (सल्ल०) की ख़िदमत में भेजा । हज़रत अस्मा (रज़ि०) हुज़ूर (सल्ल०) की ख़िदमत में पहुँचीं । उस वक़्त बड़े-बड़े सहाबा (रज़ि०) हुज़ूर (सल्ल०) के पास बैठे थे । हज़रत अस्मा (रज़ि०) ने इस तरह अपना मामला पेश किया—

> "ऐ अल्लाह के रसूल ! मेरे माँ-बाप आप पर क़ुरबान हों, मुझे अनसार की औरतों ने अपना नुमाइन्दा बनाकर आपकी ख़िदमत में भेजा है । मैं तमाम औरतों की तरफ़ से एक दरख़्वास्त लेकर हाज़िर हुई हूँ । ऐ अल्लाह के रसूल ! अल्लाह तआला ने आपको मर्दों और औरतों सबके

लिए नबी बनाकर भेजा है । हमने आपको नबी मान लिया । हम सब ने अल्लाह को अपना मालिक और आक़ा मान लिया, लेकिन हम औरतें बहुत-सी नेकियों के सवाब से महरूम रहती हैं । क्योंकि हम औरतें अपने मर्दों के घरों में पड़ी रहती हैं, औलाद को उठाए फिरती हैं । आप लोग मर्द हैं । मर्दों को हमसे अधिक सवाब के मौक़े हासिल हैं । वे जुमा की नमाज़ों में शरीक होते हैं, जनाज़े की नमाज़ पढ़ते हैं, अल्लाह की राह में जिहाद करते हैं, उनको दीनी इज्तिमा में और आपकी ख़िदमत में बैठने के मौक़े अधिक से अधिक मिलते हैं और जब आप हज, उमरा और जिहाद के लिए घरों से बाहर होते हैं तो हम औरतें आपके घरों की हिफ़ाज़त करती हैं और आपकी औलादों की देखभाल करती हैं । यह हमारी हालत है । क्या इस हाल में हम औरतें भी मर्दों के साथ अज्र व सवाब में शामिल समझी जाएँगी ?"

हुज़ूर (सल्ल०) ने यह बात पूरे ग़ौर के साथ सुनी । फिर सहाबा (रज़ि०) से पूछा— "क्या तुम सबने इस औरत से बेहतर किसी को दीन के बारे में सवाल करते पाया ?" सबने जवाब दिया, "नहीं, ऐ अल्लाह के रसूल ! हम तो यह सोच भी नहीं सकते थे कि एक औरत भी इतनी बेहतरीन बात कह सकती है । बेशक इस औरत ने अपनी जाति की बेहतरीन नुमाइन्दगी की है ।"

अब नबी (सल्ल०) ने हज़रत अस्मा (रज़ि०) की ओर देखा; फ़रमाया, "तुमको जिन औरतों ने नुमाइन्दा बनाकर भेजा है, तुम उनसे कह दो कि औरत का अपने शौहर का हुक्म मानना और उसकी ख़िदमत करना इन सारी इबादतों के सवाब के बराबर है ।"

हज़रत अस्मा (रज़ि०) हुज़ूर (सल्ल०) का यह पैग़ाम लेकर वापस हुईं । उन्होंने औरतों को यह पैग़ाम सुनाया तो सारी औरतें ख़ुश हो गईं ।

नोट : हमने सहाबियात के कारनामों में हज़रत आइशा (रज़ि०) का ज़िक्र नहीं किया है । हम उनके बारे में अलग से एक किताब लिख रहे हैं जिसमें उनके बारे में तफ़सील के साथ आपको जानकारी देंगे ।

दीन फैलाना

हम देखते हैं कि नबी करीम (सल्ल०) के ज़माने में जो भी मुसलमान होता था, वह चाहे मर्द हो या औरत, मुसलमान होने के बाद इस्लाम फैलाने की कोशिश में लग जाता था । जिस तरह मुसलमान होनेवाले मर्दों ने अपनी बीवियों, बहनों, माओं और दूसरे लोगों तक इस्लाम पहुँचाने की कोशिशें कीं, उसी तरह मुसलमान होनेवाली औरतों ने भी अपने शौहरों, भाइयों और दूसरे लोगों को इस्लाम की तरफ़ बुलाया । उनकी कोशिश होती थी कि आदमी 'ला इला-ह इल्लल्लाह' का मतलब समझ ले और हुज़ूर नबी करीम (सल्ल०) का मक़ाम पहचान ले । इन्हीं दो बातों पर सबसे ज़्यादा ज़ोर दिया जाता था । मिसाल के तौर पर कुछ नमूने पेश किए जा रहे हैं:—

● हज़रत सुमैया (रज़ि०) मक्का के मशहूर घराने 'बनी मख़्ज़ूम' की दासी थीं । वे मुसलमान हुईं तो उन्होंने अपने शौहर यासिर और बेटे अम्मार को हुज़ूर (सल्ल०) की ख़िदमत में पहुँचाया, और वे दोनों भी मुसलमान हो गए ।

● हज़रत उमर (रज़ि०) की बहन फ़ातिमा (रज़ि०) मुसलमान हुईं तो हज़रत उमर (रज़ि०) बहुत नाराज़ हुए । उनके घर पहुँचकर उनको और उनके शौहर ज़ैद को इतना मारा कि ख़ून से लथपथ कर दिया । लेकिन हुआ यह कि उसी वक़्त बहन की बातों से मुतास्सिर होकर मुसलमान हो गए और फिर हुज़ूर (सल्ल०) की ख़िदमत में पहुँच गए ।

● नबी (सल्ल०) सफ़र में थे, रास्ते में एक औरत मिली । उसके पास पानी था । सहाबा (रज़ि०) साथ थे । सहाबा (रज़ि०) ने उससे पानी लिया । हुज़ूर (सल्ल०) ने पानी की क़ीमत दी और इस्लाम पेश किया । वह औरत मुसलमान हो गई । फिर अपने क़बीले में पहुँची और उसने सारे क़बीले को मुसलमान किया ।

(बुख़ारी शरीफ़)

● हातिम ताई की बेटी एक लड़ाई में गिरफ़्तार होकर हुज़ूर (सल्ल०) की ख़िदमत में लाई गईं । आप (सल्ल०) ने उनको आज़ाद कर दिया । फिर उन्होंने 'तय' क़बीले के दूसरे क़ैदियों के बारे में सिफ़ारिश की तो आपने उन सबको भी आज़ाद कर दिया । इसका असर यह पड़ा कि वे मुसलमान हो गईं । अपने भाई अदी बिन हातिम से मिलीं । हुज़ूर (सल्ल०) के सच्चा नबी होने की भाई के सामने बात रखी । अदी मुसलमान हो गए और हुज़ूर (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िरी

देने लगे ।

● हज़रत उम्मे शुरैक मुसलमान हुईं तो मक्का के घरों में पहुँचकर औरतों को इस्लाम की दावत देने लगीं । मक्के के लोग उनसे बहुत नाराज़ हुए और उनको मक्के से निकाल दिया ।

● मक्का की फ़तह के समय हज़रत इकरमा (रज़ि०) भागकर यमन चले गए थे । उनकी बीवी उम्मे हकीम बिन्ते अलहारिस (रज़ि०) मुसलमान हो गईं । फिर वे यमन पहुँचीं । शौहर के सामने ऐसी हिकमत से इस्लाम पेश किया कि वे मुसलमान हो गए । हज़रत उम्मे हकीम (रज़ि०) उनको हुज़ूर के पास लाईं ।

● हज़रत उम्मे सुलैम (रज़ि०) मशहूर सहाबिया हैं । वे मुसलमान हुईं तो मदीने के मुहल्लों में जा-जाकर इस्लाम की तबलीग़ करती थीं । वे बेवा हुईं तो उनके क़बीले के एक भले आदमी अबू तलहा ने शादी का पैग़ाम दिया । उस वक़्त अबू तलहा मुसलमान नहीं हुए थे । उम्मे सुलैम (रज़ि०) ने उनपर इस तरह तबलीग़ की—

> "ऐ अबू तलहा ! मैं तो मुहम्मद (सल्ल०) पर ईमान लाई हूँ और गवाही देती हूँ कि वे अल्लाह के रसूल हैं । ताज्जुब है कि तुम इतने समझदार आदमी होते हुए भी अब तक मुसलमान नहीं हुए ! बड़े अफ़सोस की बात है कि तुम लकड़ी और पत्थर को पूजते हो । उनके बुत बनाते हो । ये बेजान तुम्हें क्या फ़ायदा पहुँचा सकते हैं । तुमको सोचना चाहिए कि मैं मुसलमान एक मुशरिक से किस तरह शादी कर सकती हूँ !"

यह बात सुनकर अबू तलहा दिन भर ग़ौर करते रहे । सुबह को उम्मे सुलैम (रज़ि०) के पास गए और मुसलमान हो गए ।

● हज़रत नाजिया (रज़ि०) अनसार के एक मशहूर ख़ानदान बनू असलम की औरत थीं । बाप सुहैल बिन उमर (रज़ि०) अरब के मशहूर व्यापारी और असलम क़बीले के सरदार थे । हज़रत नाजिया (रज़ि०) उस वक़्त मुसलमान हुईं जब हुज़ूर (सल्ल०) हिजरत फ़रमाकर मदीना पहुँचे । उनके ख़ानदानवाले मदीना से कुछ फ़ासले पर रहते थे । मगर ये ख़ुद मदीने में रहा करती थीं ।

हज़रत नाजिया (रज़ि०) निहायत संजीदा और ख़ूबसूरत थीं । क़बीला बनू असलम में उनसे बढ़कर दूसरी औरत न थी । शेरो-शायरी से भी बेहद दिलचस्पी रखती थीं । उनकी नज़्में बड़ी असरदार होती थीं ।

हज़रत नाजिया (रज़ि०) को इस्लाम से बहुत दिलचस्पी थी । उनका यह उसूल

था कि महीने में दो बार अलग-अलग क़बीलों की औरतों के पास जाया करती थीं और उनके सामने इस्लाम की ख़ूबियाँ और अच्छाइयाँ बयान करती थीं । उनकी बोली में बड़ा असर होता था । जब वे औरतों की मजलिस में नसीहत करतीं तो एक अजीब असर लोगों पर पड़ता । जबतक उनकी बात पूरी न हो जाती औरतें ध्यान से सुनती रहतीं थीं । उनका अख़लाक़ बड़ा अच्छा था । जब उन्हें यह मालूम होता कि किसी क़बीले की औरत बीमार है और उसका कोई हमदर्द और देखभाल करनेवाला नहीं है, तो वह बेचैन होकर उसके यहाँ पहुँच जातीं और जब तक उसे आराम न हो जाता, बराबर उसके लिए खाना वग़ैरह भेजतीं और उसकी ख़िदमत करती रहतीं ।

उनकी हमदर्दी मुस्लिम औरतों तक ही महदूद न थी । वे हर क़ौम की ग़रीब औरतों की ख़िदमत करना अपना फ़र्ज़ समझती थीं । उनकी इस हमदर्दी की वजह से तमाम क़बीलों की औरतें उनकी इज़्ज़त करती थीं । हज़रत नाजिया (रज़ि०) की कोशिशों से 112 औरतें मुसलमान हुईं । हालाँकि वे एक मालदार बाप की बेटी थीं, मगर उनके मिज़ाज में घमंड और ग़ुरूर का नामो निशान तक नहीं था । याद्दाश्त इतनी तेज़ थी कि जो बात ध्यान से सुन लेती थीं, याद हो जाती थी । तबलीग़ में यही बातें बड़ा काम देती थीं ।

जंगे यरमूक की फ़तह के बाद हज़रत नाजिया (रज़ि०) अपने शौहर के साथ मदाइन पहुँचीं । वहाँ आपने ईरानी औरतों की एक बहुत बड़े इजतिमा में यह तक़रीर की—

> "हर तरह की तारीफ़ अल्लाह पाक के लिए है, जो एक है और उस जैसा दूसरा कोई नहीं । अल्लाह ही ज़मीन और आसमानों का मालिक है । उसका कोई साझी नहीं, और उसके सिवा कोई माबूद (पूज्य) नहीं । जब कोई अपराधी और गुनहगार आदमी उसके आगे तौबा के लिए सिर झुकाता है, तो वह मेहरबान, उसके गुनाहों को माफ़ कर देता है और अपनी रहमत के दरवाज़े उसके लिए खोल देता है ।
>
> मोहतरमा बहनो ! आज मैं आपको अपने रसूल (सल्ल०) के कुछ हालात सुनाना चाहती हूँ । उम्मीद है कि आप इतमीनान और सब्र के साथ मेरी बात सुनेंगी ।
>
> क्या यह सच नहीं है कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के तशरीफ़ लाने से पहले इराक़, सीरिया, ईरान और अ़रब में जिहालत की घटाएँ छा रही थीं और हर ओर ज़ुल्मो सितम (अत्याचार) का शासन था । इनसानियत के अधिकार पाँव तले रौंद दिए गए थे । औरतों का दर्जा जानवरों से

भी बदतर था । वे कभी शैतान समझी जाती थीं तो कभी 'पत्थर' ।
अख़लाक़ी क़ानूनों को भुला दिया गया था और बुरे कामों से कोई शरमिंदा
न होता था । ऐसे हालात में हुज़ूर (सल्ल०) ने अपनी पाक और मुक़द्दस
तालीमात से ज़ुल्मो सितम, झूठ और फ़रेब को ख़त्म किया और जाहिल
वहशियों को इनसान बनाया । अरबों का ज़ुल्म हद से बढ़ा हुआ था ।
हुज़ूर सबसे बड़े सुधारक और सारी दुनिया के लिए रहमत बनकर आए
और उन्होंने उन्हें धूल से उठाकर आसमान पर पहुँचाया ।

प्यारी बहनो ! मैं गुज़ारिश करती हूँ कि ग़लत रास्ता छोड़कर सही
और सच्चा रास्ता अपनाओ । अंधकार से निकलकर रौशनी में आ जाओ ।
अल्लाह भी तुम्हारी मदद करेगा ।''

यह तक़रीर सुनकर बहुत-सी औरतें मुसलमान हो गईं ।

इस्लाम फैलानेवाली पाकीज़ा औरतों के ये नमूने हमारे सामने हैं । इन नमूनों को सामने रखकर अगर आज हमारी बहनें और माएँ इस्लाम फैलाने में लग जाएँ तो अल्लाह तआला उन्हें ज़रूर कामयाबी देगा । शर्त यह है कि जिस साँचे में ये नमूने ढले हुए थे उसमें पहले ख़ुद ढल जाएँ, अपना ईमान उन नमूनों जैसा बनाएँ और अपना इस्लाम ऐसा ही बनाएँ । अपने अख़लाक़ को उन्हीं के जैसा सँवारें और वही तड़प अपने अन्दर पैदा करें जो उन पाकीज़ा औरतों में थी । अपने घरों के अन्दर अपने बच्चों, भाइयों और बड़ों को उठते-बैठते इस्लाम के साँचे में ढालने की कोशिश करें । अपने पड़ोस से ताल्लुक़ बढ़ाएँ । वे बीमार हों तो उनकी देख-भाल करें । उन्हें तोहफ़े भेजें, चाहे वह तोहफ़ा हुज़ूर (सल्ल०) के कहने के मुताबिक़ मामूली चीज़ ही क्यों न हो । उनसे इस्लामी बातें करें, इस्लाम का हक़ होना उन पर वाज़ेह करें ।

हमारी पढ़ी-लिखी बहनों के ताल्लुक़ात ग़ैर मुस्लिम बहनों से ज़रूर होंगे । कोई तो उनकी सहेली होगी, कोई साथ पढ़ी होगी । ये ताल्लुक़ात तक़ाज़ा करते हैं कि उन बहनों को जहन्नम की आग से बचाने की कोशिश की जाए । उनसे सच्ची हमदर्दी यही है । अगर हमारी बहनें और माएँ यह फ़र्ज़ अदा नहीं करेंगी तो हश्र के मैदान में अल्लाह उनसे पूछेगा कि जो नेमत तुमको मिली हुई थी, उस नेमत से अपनी सखियों और सहेलियों को क्यों महरूम रखा । सोचने की बात यह है कि उस वक़्त हमारी बहनों और माओं के पास क्या जवाब होगा । उम्मीद है कि यह इशारा काफ़ी होगा और हमारी बहनें और माएँ इन पाकीज़ा नमूनों को सामने रखकर इस्लाम फैलाने में लग जाएँगी । ख़ुदा उनकी मदद फ़रमाए ।

(आमीन) !

रसूल (सल्ल०) से मुहब्बत

मुहब्बत ऐसी चीज़ है जो सुख-दुख और रंज व ग़म के फ़र्क़ को मिटा देती है । मुहब्बत दुनियादारी की भी होती है और दीनदारी की भी । जब इनसान को दुनिया की मुहब्बत हो जाती है तो वह तन-मन-धन से उसे करने में लग जाता है । लेकिन इसमें एक ऐब यह होता है कि उसके दिल से हराम व हलाल का फ़र्क़ ख़त्म हो जाता है । वह बुरी तरह दुनिया कमाने में लग जाता है । अपने सुख-दुख के सामने दूसरों के सुख-दुख की परवाह नहीं करता । नतीजा यह होता है कि वह अल्लाह के बन्दों के लिए एक अज़ाब बन जाता है ।

लेकिन ख़ुदा और रसूल की मुहब्बत का असर इनसान पर बहुत अच्छा पड़ता है । ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) से मुहब्बत करनेवाले चाहे अपने सुख-दुख का ख़याल न रखें, लेकिन वे अल्लाह के दूसरे बन्दों का बेहद ख़याल रखते हैं । वे हराम और हलाल के फ़र्क़ को सामने रखते हैं । ख़ुद ईसार और क़ुरबानी से काम लेते हैं और दूसरों को ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा पहुँचाते हैं । उनका सबसे बड़ा कारनामा यह होता है कि वे अपने को भूल जाते हैं और ख़ुदा और उसके रसूल का नाम ऊँचा करने की धुन में लगे रहते हैं । जो कुछ अल्लाह तआला के हुक्म रसूल के ज़रिए से उन तक पहुँचे हैं, उसके अनुसार ज़िन्दगी बसर करना उनका असल मक़सद होता है । वे हर वक़्त इस कोशिश में लगे रहते हैं कि ख़ुदा ख़ुश हो जाए । चूँकि अल्लाह के हुक्म रसूलों के ज़रिए मिलते हैं और उन हुक्मों पर चलने का तरीक़ा रसूल ही बताते हैं, इसलिए रसूल से मुहब्बत असल में ख़ुदा से ही मुहब्बत है । इसके नमूने जहाँ बेशुमार मर्दों में देखे गए हैं वहीं औरतों में भी बहुत नज़र आते हैं । यह मज़मून बहुत फ़ैलाव चाहता है, लेकिन हम इसे कम लफ़्ज़ो में पेश करने की कोशिश करेंगे और इससे संबंधित पाकीज़ा औरतों के दो-दो, एक-एक नमूने ही लाएँगे । हमारी माएँ और बहनें, 'ढेर में मुट्ठी भर' नमूनों से ही सबक़ हासिल कर लें ।

वाज़ेह रहे कि मुहब्बत इनसान के दिल में होती है, जिसे इनसान देख नहीं सकता । लेकिन जब उस मुहब्बत का इज़हार उनकी बातों और कामों से होने लगता है तो देखनेवाले समझ जाते हैं कि उस इनसान को फ़लाँ से मुहब्बत है । ये बातें और काम 'मुहब्बत के तक़ाज़े' कहलाते हैं, यानी मुहब्बत क्या चाहती है ? मुहब्बत करनेवाले की ज़बान, उसके हाथ-पैर और उसकी हरकतें इस सवाल का जवाब देती हैं ।

1. मुहब्बत का एलान

मुहब्बत में सबसे पहला नम्बर ज़बान से एलान करना है । एक बार एक आदमी ने नबी (सल्ल०) से अर्ज़ किया— "ऐ अल्लाह के रसूल ! यह जो आदमी जा रहा है, मैं उससे मुहब्बत करता हूँ । आपने फ़रमाया— "जाओ उसे भी बता दो ।"

इसका मतलब यह हुआ कि जिससे मुहब्बत की जाए उसे भी मालूम होना चाहिए कि कौन मुझसे मुहब्बत करता है । यही वजह है कि किसी इनसान को ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) से मुहब्बत हो जाती है तो वह ज़बान से इक़रार और एलान करता है और ऊँची आवाज़ से गवाही देता है कि—

'अशहदु अल्ला इला-ह इल्लल्लाह, व अशहदु
अन-न मुहम्मदन अब्दुहू व रसूलुह ।'

यानी, मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं है और मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के बन्दे और उसके रसूल हैं ।

यह कलिमा सचमुच उस मुहब्बत का एलान करता है । इस एलान के बग़ैर मुहब्बत क़बूल नहीं; चाहे दिल मुसलमान हो चुका हो । इस एलान के बाद मुहब्बत के तक़ाज़े शुरू होते हैं । एक शायर ने कितनी सच्ची बात कही है—

जब से एलान मुहब्बत का किया है मैंने ।
मुझसे हर एक मुहब्बत की निशानी माँगे ॥

मतलब यह है कि जब तुम ज़बान से मुहब्बत-मुहब्बत रटते हो तो तुम्हारी बातों और कामों से इसका सबूत मिलना चाहिए ।

नबी (सल्ल०) के दौर में पाकीज़ा औरतों ने ऐसी हालत में आप से मुहब्बत का एलान किया जब कि एलान करनेवालों की ज़बान काट ली जाती थी । मशहूर सहाबी हज़रत अम्मार (रज़ि०) की माँ हज़रत सुमैया (रज़ि०) ने हुज़ूर (सल्ल०) की मुहब्बत का एलान किया तो अबू जहल ने पहले उन्हें लोहे की ज़िरह पहनाई और अरब की जलती रेत में दोपहर के वक़्त खड़ा कर दिया । वह "ला इला-ह इल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह" का एलान करती रहीं तो उसी तप्ती रेत में उन्हें लिटा दिया और फिर भी वह बाज़ न आईं तो अबू जहल ने झुंझलाकर उनकी नाभि के नीचे इस ज़ोर से बरछी मारी कि उससे हज़रत सुमैया (रज़ि०) की मौत हो गई । हज़रत सुमैया (रज़ि०) अबू जहल के ख़ानदान की दासी थीं ।

इस तरह जब हज़रत उमर ने (जब वे मुसलमान नहीं हुए थे) अपनी बहन के

बारे में सुना तो वे उनके घर गए। पूछा तुम लोग मुहम्मद पर ईमान लाए हो। जवाब दिया— "हाँ।" बस भाई ने बहन को इतना मारा कि उन्हें लहूलुहान कर दिया। जब यह सज़ा हद से ज़्यादा होने लगी तो उमर की बहन फ़ातिमा ने भाई से कहा— "उमर ! यह मुहब्बत रग-रग में समा गई है, अब नहीं निकलती। तुम्हारा जो बस चले कर लो।"

तारीख़ की यह भी एक अनोखी घटना है कि अबू जहल जब हज़रत सुमैया (रज़ि०) से हारा तो उसने उस मुहब्बत करनेवाली की जान ले ली और हज़रत उमर (रज़ि०) जब इस मैदान में बहन से हारे तो ख़ुद अल्लाह और रसूल (सल्ल०) की मुहब्बत का एलान कर दिया। क़िस्मत इसी को कहते हैं। मुहब्बत का एलान करनेवाले जिस ज़मीन पर चलते-फिरते हैं, उसी ज़मीन पर कैसे-कैसे आसमान मिलते हैं। वे उसका रास्ता रोकते हैं, लेकिन मुहब्बत का वफ़ादार कहता है—

वफ़ा की राह यूँ तय की है मैंने।
कि मेरे आगे-आगे आसमाँ थे॥

यही हज़रत उमर (रज़ि०) जब ईमान नहीं लाए थे तो उनके ख़ानदान की एक लौण्डी हज़रत लुबनीया (रज़ि०) ने अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) की मुहब्बत का एलान किया। हज़रत उमर उन्हें इतना मारते कि थक जाते थे। थककर कहते— "अच्छा ज़रा सुस्ता लूँ, फिर मारूँगा।" इसी तरह एक दूसरी लौण्डी हज़रत ज़ुनैरा (रज़ि०) को इस मुहब्बत के जुर्म में सख़्त तकलीफ़ पहुँचाते थे।

रसूल (सल्ल०) से मुहब्बत की घटनाएँ बहुत याद आती चली आ रही हैं और मज़मून ऐसा है कि लिखते-लिखते क़लम कहीं से कहीं जा पड़ता है। मैं मुख़्तसर लफ़्ज़ों में पूरा करने की कोशिश करता हूँ और वह है कि फैलने की कोशिश करता है। बहरहाल फिर आता हूँ अपनी बात पर—

इस्लामी तारीख़ के जाननेवाले जानते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से मुहब्बत का एलान करनेवालों को मक्के के सरदारों ने जब नाक़ाबिले बरदाश्त तकलीफ़ देनी शुरू कर दी, तो हुज़ूर (सल्ल०) ने इन मुहब्बत करनेवालों से कहा कि तुम लोग हबशा चले जाओ। यह सुनकर जहाँ बहुत-से मुसलमान मर्द हब्शा चले गए वहीं बहुत-सी औरतें भी हिजरत करके हब्शा चली गईं। माँ-बाप को छोड़ा, घर और बस्ती को छोड़ा, ऐशो आराम को छोड़ा मगर रसूल (सल्ल०) की मुहब्बत को सीने से लगाए अजनबी देश की ओर चल पड़े। वाक़िया इस प्रकार है कि—

हज़ार तरह वही आज़माए जाते हैं,
निशान जिनमें मुहब्बत के पाए जाते हैं।

हबशा जाकर हज़रत उम्मे हबीबा (रज़ि०) का शौहर बेदीन हो गया तो हज़रत उम्मे हबीबा (रज़ि०) ने उसे ठुकरा दिया । दुनिया जानती है कि बीवी का सहारा दुनिया में शौहर से बढ़कर दूसरा नहीं । ऐसी हालत में उम्मे हबीबा (रज़ि०) की यह हिम्मत उस मुहब्बत के एलान का बड़ा सबूत है, जो उन्होंने मक्का मुअज़्ज़मा में किया था ।

अब यह उनकी ख़ुशक़िस्मती है कि प्यारे नबी को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने मुहब्बत का जवाब इस तरह दिया कि मदीने से निकाह का पैग़ाम भेजा और उम्मे हबीबा (रज़ि०) ज़मीन से उठकर आसमान पर पहुँच गईं । अब तक वे एक मोमिना थीं, मुहब्बत ने उन्होंने सारे जहानों के मुसलमानों की माँ, उम्मुल मोमिनीन बना दिया ।

हमने मुहब्बत की निशानी के सबूत ही को छेड़ा था, वह आप से आप बढ़ता जा रहा है । मालूम ऐसा होता है कि इसे घेरना हमारे बस की बात नहीं । इसलिए उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) की एक गवाही पर इसे ख़त्म करते हैं और मुहब्बत की दूसरी निशानी की तरफ़ मुतवज्जोह होते हैं । हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाती है—

> ''हमें किसी ऐसी औरत का हाल मालूम नहीं, जो ईमान लाकर इस्लाम से फिर गई हो ।''

2. महबूब के सिवा सब कुछ भूल जाना

किताबों में मिलता है कि एक साहब ने हुज़ूर (सल्ल०) से अर्ज़ किया— ''ऐ अल्लाह के रसूल ! मुझे आप से मुहब्बत है ।'' पूछा गया, ''कितनी है ?'' अर्ज़ किया— ''जान व माल सब आप पर क़ुरबान ।'' फ़रमाया, ''और औलाद ?'' उन साहब ने कुछ रुककर कहा, ''औलाद भी क़ुरबान ।'' फ़रमाया, ''और ख़ुद ?'' अब वह साहब फिर कुछ रुके फिर अर्ज़ किया, ''इस वक़्त से पहले यह मक़ाम हासिल नहीं हुआ था, लेकिन अब मैं अपने आपसे भी ज़्यादा आपसे मुहब्बत करता हूँ ।'' फ़रमाया, ''अब तुम्हारी मुहब्बत कामिल हो गई ।''

आइए इस कामिल (पूर्ण) मुहब्बत को पाकीज़ा औरतों में देखिए । हक़ीक़त यह है कि हर वह औरत जिसने हुज़ूर (सल्ल०) की मुहब्बत का एलान किया था, वह मुहब्बत में पूरी उतरी थी । हज़रत उम्मे अम्मारा (रज़ि०) की मुहब्बत और क़ुरबानी के क़िस्से और दूसरी पाकीज़ा औरतों की क़ुरबानियों का ज़िक्र हम इससे पहले कर चुके हैं । सिर्फ़ एक नमूना इस जगह के लिए महफ़ूज़ कर लिया

था । क़िस्सा इस प्रकार है—

उहुद की लड़ाई में इस्लामी लश्कर में बदहवासी फैली कि हज़रत हमज़ा (रज़ि०) शहीद हो गए, मुसअब बिन उमैर (रज़ि०), जिन के हाथ में इस्लामी झण्डा था, शहीद हुए और फिर हुज़ूर (सल्ल०) ज़ख़्मी होकर एक गढ़े में जा गिरे तो दुश्मन ने एलान कर दिया कि मुहम्मद (सल्ल०) को हमने क़त्ल कर दिया । यह ख़बर मदीने में पहुँची । एक सहाबिया यह सुनकर अपने को भूल गईं और रसूल (सल्ल०) की मुहब्बत में जंग के मैदान की तरफ़ दौड़ पड़ीं । रास्ते में किसी ने कहा— "तुम्हारा शौहर शहीद हो गया ।" सहाबिया (रज़ि०) ने पूछा, "प्यारे रसूल (सल्ल०) ज़िन्दा हैं ?" आगे बढ़ी तो फिर किसी ने बताया कि तुम्हारा भाई शहीद हो गया । सहाबिया (रज़ि०) ने पूछा, "यह बताओ प्यारे रसूल (सल्ल०) तो ज़िन्दा हैं ?" फिर आगे बढ़ीं तो किसी ने बताया कि तुम्हारे बेटे शहीद हो गए । पूछा, "मेरे प्यारे रसूल (सल्ल०) की ख़ैरियत बताओ !"

यह सुनते और कहते हुए वह सहाबिया (रज़ि०) हुज़ूर (सल्ल०) तक पहुँचीं । आप (सल्ल०) को ज़िन्दा और सलामत देखा तो अल्लाह का शुक्र अदा किया । यहाँ बताया गया कि तुम्हारा पूरा ख़ानदान शहीद हो गया । जवाब दिया— "प्यारे रसूल (सल्ल०) ज़िन्दा हैं तो फिर मुझे किसी और का ग़म नहीं ।"

इसे कहते हैं मुहब्बत में अपने को भूल जाना, सब कुछ भूल जाना और सिर्फ़ महबूब को याद रखना ।

3. महबूब के गुण गाना

महबूब जब दिलो दिमाग़ और रग-रग में रच-बस जाता है तो मुहब्बत करनेवाले को वही याद रहता है और वह हर वक़्त उसके गुण गाता है । नबी करीम (सल्ल०) से मुहब्बत करनेवालियों का भी यही हाल होता है । चुनाँचे सहाबियात यानी पाकीज़ा औरतों के पाकीज़ा नमूनों में बहुत-से नूमने हमारे सामने हैं । उनमें से कुछ पेश किए जा रहे हैं ।

हज़रत अदी बिन हातिम ताई की बहन हुज़ूर (सल्ल०) से मिलीं । मुसलमान होकर जब अपने ख़ानदान में गईं तो ज़बान पर हुज़ूर (सल्ल०) ही की बातें थीं । उन्होंने भाई से आप (सल्ल०) की तारीफ़ की । आख़िर में कहा—

> "अदी ! मुहम्मद (सल्ल०) सचमुच अल्लाह के रसूल हैं । तुमसे जितना जल्द हो सके मदीना पहुँचो और इस्लाम क़बूल कर लो ।"

उम्मे सलमा (रज़ि०) अपने शौहर अबू सलमा (रज़ि०) के साथ हिजरत की

ग़रज़ से मक्का से मदीना को रवाना हुईं। उनके ख़ानदानवालों ने अबू सलमा (रज़ि०) से उनको छीन लिया। साल भर के बाद उन्हें मदीना जाने की इजाज़त मिली तो ज़बान पर ये शेर थे—

> "ऐ ऊँटनी ! तुझे उस ख़ुदा की क़सम है जिसने मुहम्मद (सल्ल०) को रसूल बनाकर भेजा। क्या आज तू यह एहसान करेगी कि जल्द से जल्द मुझे उस शहर में पहुँचा दे, जहाँ अबू सलमा उस महबूब के पास बैठे हैं जो मेरे भी महबूब हैं और हम में कोई किसी का 'रक़ीब' नहीं। हवाओ ! तुम उस रुख़ पर चलो जो रसूल (सल्ल०) के शहर का रुख़ है।"

वाज़ेह रहे कि उम्मे सलमा (रज़ि०) किसी रहनुमा के बग़ैर मदीने की ओर रवाना हो गई थीं। मुहब्बत का यह भी एक अनोखा करिश्मा है कि ऊँटनी ख़ुद-बख़ुद मदीने के रुख़ पर जा रही थी और वे मदीना पहुँच गईं।

जब हुज़ूर (सल्ल०) मक्के से हिजरत करके मदीना पहुँचे तो औरतें तो औरतें छोटी-छोटी बच्चियाँ भी हुज़ूर (सल्ल०) का इस्तिक़बाल करने के लिए उमड़ आई थीं। उनकी ज़बानों पर हुज़ूर का नाम था। वे दफ़ बजा-बजाकर यह गीत गा रही थीं—

हम ख़ानदान बनू नज्जार की लड़कियाँ हैं,
मुहम्मद कितने अच्छे हमसाया हैं।

और परदानशीन औरतें ये शेर पढ़ रही थीं—

दक्षिण की घाटियों से हम पर
चौदहवीं रात का चाँद तुलू हुआ है।

(वाज़ेह रहे कि मक्का मुअज़्ज़मा, मदीना मुनव्वरा के दक्षिण में है। चौदहवीं रात के चाँद से मुराद नबी सल्ल० हैं।)

हम पर ख़ुदा का शुक्र वाजिब है,
जब तक दुआ करनेवाले दुआ करें।

ख़ुशी के एक मौक़े पर मदीने की औरतें हुज़ूर (सल्ल०) के घर में इकट्ठा थीं और इधर-उधर की बातों के बदले वे हुज़ूर (सल्ल०) की तारीफ़ के गीत गा रही थीं। ये गीत बद्र की लड़ाई के बारे में थे। गीतों का एक बोल यह भी था—

हम में एक रसूल (सल्ल०) हैं,
जो कल की बात जानते हैं।

यह सुनकर हुज़ूर (सल्ल०) ने औरतों को यह गाने से रोक दिया । फ़रमाया—

"वही गाओ, जो पहले गा रही थीं ।"

हज़रत उम्मे अतिया (रज़ि०) जब आप (सल्ल०) का ज़िक्र करतीं तो कहतीं, "मैं आप (सल्ल०) पर क़ुरबान ।"

जब आप (सल्ल०) किसी लड़ाई पर तशरीफ़ ले जाते तो औरतें इजतिमाई और इनफ़िरादी तौर से आप (सल्ल०) की सलामती और वापसी के लिए मन्नतें मानती थीं । एक बार हुज़ूर (सल्ल०) एक लड़ाई से वापस आए तो एक सहाबिया ने अर्ज़ किया— "ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ! मैंने यह मन्नत मानी थी कि अगर आप ज़िन्दा और सलामत वापस आए तो आप (सल्ल०) के ख़ुदा की शान में गीत गाऊँगी ।"

चुनांचे उन्होंने ख़ुदा की तारीफ़ में गीत गाए । हुज़ूर (सल्ल०) ने ध्यान से सुना । गीत में तारीफ़ का यह हिस्सा भी था कि "ख़ुदा का शुक्र हम पर लाज़िमी है कि उसने हमें मुहम्मद (सल्ल०) नाम का रसूल अता किया ।"

औरतें नात (प्यारे नबी सल्ल० की तारीफ़ में गाए गीत) के बोल अपने बच्चों को याद करा देती थीं और कहती थीं; "जाओ गली में खेलो और ऊँची आवाज़ में गाओ ।"

4. अपने पर इख़तियार दे देना

यह मुहब्बत और प्यार की सबसे ऊँचे दर्जे की निशानी है कि अपनी जान को महबूब के हवाले कर दिया जाए और अपने को उसके सुपुर्द कर दिया जाए कि वह जो चाहे करे । इस निशानी की बहुत-सी मिसालें हैं । बहुत-सी औरतों और लड़कियों ने अपनी जान पर हुज़ूर (सल्ल०) को इख़तियार दे दिया था कि आप (सल्ल०) जिससे चाहें उनकी शादी कर दें । सिर्फ़ दो-तीन मिसालें पेश की जा रही हैं—

हज़रत सअद सुलैमी (रज़ि०) जब मुसलमान हुए तो नौजवान थे । शक्लोसूरत में ख़ूबसूरत नहीं बल्कि इसके विपरीत ऐसे थे कि कोई लड़की उनको पसन्द नहीं करती थी । उन्होंने यह बात हुज़ूर से कही । आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अनसार क़बीले के फ़लाँ सरदार की लड़की से पैग़ाम ले जाओ ।" सअ़द सुलैमी (रज़ि०) गए और अनसारी सरदार को पैग़ाम दिया तो सरदार ने धुतकार दिया । यह सब कुछ उनकी लड़की देख और सुन रही थी । उसने बाप से कहा— "अब्बा जान ! इस पैग़ाम के साथ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सिफ़ारिश है, मैं इस पैग़ाम

को क़बूल करती हूँ ।

यह सुनकर अनसारी सरदार ने सअ्द (रज़ि०) को बुलाया और निकाह कर दिया ।

फ़ातिमा बिन्ते क़ैस (रज़ि०) मशहूर सहाबिया हैं । रईस ख़ानदान की और निहायत ख़ूबसूरत थीं । मशहूर सहाबी अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि०), जो बड़े दौलतमंद थे, उनसे शादी करना चाहते थे । यह बात फ़ातिमा बिन्ते क़ैस (रज़ि०) को मालूम थी । आप (सल्ल०) ने उसामा बिन ज़ैद (रज़ि०) के लिए पैग़ाम दिया तो फ़ातिमा ने फौरन क़बूल कर लिया ।

बस एक और लेकिन बड़ा ही दिलचस्प वाक़िआ सुन लीजिए । एक सहाबी थे— हसमुख । ऐसे हसमुख कि कभी-कभी उनका हसमुख होना मस्ख़रापन बन जाता । इसलिए सहाबा (रज़ि०) उनको पसन्द नहीं करते थे, बल्कि उनसे दूर रहना बेहतर समझते थे । एक बार उन्होंने ग़ज़ब ही कर दिया । कुछ सहाबा (रज़ि०) के साथ कहीं जा रहे थे । दूसरी तरफ़ से एक क़ाफ़िला आ रहा था । चुपके से क़ाफ़िले के सरदार से मिले और कहा— "मेरे पास इतने ग़ुलाम हैं । उन्हें इतने में बेचता हूँ (यानी सस्ते दामों में), तुम ख़रीदते हो ?" सरदार ने ख़रीद लिया । यह बात सहाबा (रज़ि०) को मालूम हुई । उनको डाँटा गया, लेकिन वे हँसी के मारे दोहरे हुए जा रहे थे । यह मस्ख़रापन क़ाफ़िले के सरदार को मालूम हुआ । उसने क़ीमत वापस ले ली । हुज़ूर (सल्ल०) ने सुना, आपने कुछ नहीं कहा ।

इन्हीं सहाबी के निकाह का पैग़ाम हुज़ूर (सल्ल०) ने एक अनसारी लड़की के बाप को दिया । अनसारी ने अर्ज़ किया कि लड़की की माँ से पूछ लूँ । माँ से पूछा गया तो उसने साफ़ इनकार कर दिया । लेकिन जब लड़की को मालूम हुआ तो उसने जो कुछ कहा वह सुनने और याद रखने के लायक़ है । उसने कहा—

> "ऐ मेरे माँ-बाप ! अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का पैग़ाम वापस नहीं किया जा सकता । मुझे हुज़ूर (सल्ल०) के हवाले कर दो । अल्लाह तआला हरगिज़ मुझे नुक़्सान में नहीं डालेगा ।"

5. फ़रमाँबरदारी

सच्चा प्यार यह चाहता है कि महबूब जो कहे उस पर बिना झिझक अमल किया जाए । पाकीज़ा औरतों ने इस तक़ाज़े को भी पूरी तरह अदा किया । इस सिलसिले में हज़ारों क़िस्से मिलते हैं, लेकिन हमसे वे बातें सुनिए जिन पर आज अमल नहीं होता या उन बातों के अवसर पर आज हम अपने क़ाबू में नहीं रहते ।

शादी और ग़म के मौक़ों पर बहुत-से लोगों को देखा जाता है कि जब उनके घरों में शादी और ग़मी के मौक़े आते हैं तो वह सब कुछ उनके घरों में भी होता है, जो जाहिलों के यहाँ होता है। उस वक़्त न अल्लाह याद रहता है और न रसूल की फ़रमाबरदारी। लेकिन ज़रा इन नमूनों को तो देखिए—

आप (सल्ल०) ने शौहर की मौत पर इद्दत का वक़्त मुक़र्रर फ़रमाया है। शौहर के अलावा घर के दूसरे लोगों की मौत पर तीन दिन ग़म मनाने को कहा है। पाकीज़ा औरतों ने इस पर सख़्ती से अमल किया।

हज़रत ज़ैनब बिन्ते जहश (रज़ि०) के भाई अल्लाह को प्यारे हुए तो तीन दिन के बाद चौथे दिन ही कुछ औरतें मिलने आईं तो उनके सामने ख़ुशबू लगाई और कहा कि इस वक़्त मुझे ख़ुश्बू लगाने की ज़रूरत नहीं थी। लेकिन मैंने प्यारे रसूल (सल्ल०) से सुना है कि किसी मुसलमान औरत को शौहर के ग़म के अलावा यह जाएज़ नहीं कि तीन दिन से ज़्यादा ग़म मनाए। इसलिए मैं इस हुक्म को इस वक़्त अमल में ला रही हूँ।

हज़रत उम्मे हबीबा (रज़ि०) के बाप का इन्तिक़ाल हो गया तो उन्होंने तीन दिन के बाद तेल लगाया, ख़ुशबू लगाई और वही हुक्म दूसरी औरतों के सामने बयान किया कि मुझे इसकी ज़रूरत नहीं थी, लेकिन नबी (सल्ल०) के हुक्म को पूरा कर रही हूँ।

हज़रत आइशा (रज़ि०) मदीने के एक बुरे आदमी के बारे में कुछ कह रही थीं। सुननेवालियों में से एक औरत ने बताया, "उम्मुल मोमिनीन ! आज वह आदमी मर गया।" यह सुनते ही हज़रत आइशा सिद्दीक़ा (रज़ि०) ने अपनी ज़बान रोक ली और उसके लिए मग़फ़िरत (मुक्ति) की दुआ की। उस औरत ने फिर अर्ज़ किया, "अभी तो आप उसके लिए यह और यह कह रही थीं।" आइशा (रज़ि०) ने कहा— "मेरे महबूब (सल्ल०) ने मुझे यही तालीम दी है कि मरे हुए लोगों को बुरा न कहा जाए।"

एक बार आप (सल्ल०) मस्जिद से निकल रहे थे। देखा कि औरतें मर्दों की भीड़ में घुल-मिलकर चल रही हैं। फ़रमाया— "तुम पीछे चलो और मर्दों में गडमड न हो।" यह सुनते ही औरतें मर्दों से अलग चलने लगीं। यहाँ तक कि उनके कपड़े दीवारों से छूते थे लेकिन उन्होंने इस पर अमल किया।

एक बार आप (सल्ल०) तक़रीर फ़रमा रहे थे। भीड़ ज़्यादा थी। लोग बैठनेवालों के पीछे खड़े थे। कुछ और लोग भी आ रहे थे। यह देखकर आप (सल्ल०) ने फ़रमाया— "बैठ जाओ !" कुछ मर्द और औरतें आ रही थीं। उनमें हज़रत

अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) भी थे । वे सुनते ही वहीं रास्ते में बैठ गए और इसके बाद औरतें भी बैठ गईं । (सुब्हानल्लाह)

हज़रत उमर (रज़ि०) का स्वाभिमान और ग़ैरत मशहूर है । वे इस मामले में बड़े सख़्त थे, लेकिन हुज़ूर (सल्ल०) की तरफ़ से इजाज़त थी (आदेश नहीं) कि औरतें जमाअत की नमाज़ में शामिल हो सकती हैं । उमर (रज़ि०) की बीवी जमाअत से नमाज़ पढ़ने जाया करती थीं । कुछ लोगों ने उन्हें हज़रत उमर (रज़ि०) की ग़ैरत की तरफ़ तवज्जोह दिलाई तो बोलीं— "तो फिर वे मुझे रोक क्यों नहीं देते ।"

—शादी के अवसर पर उन रस्मों और दहेज वग़ैरह का कहीं ज़िक्र हमें नहीं मिला, जो आज हमारे समाज में मौजूद हैं । इसलिए हम क्या कहें ?

नोट :

मुहब्बत के तक़ाज़ों में महबूब का अदब करना, महबूब की ख़िदमत करना, महबूब की यादगार बरक़रार रखना, महबूब की ख़िदमत में हाज़िरी देना आदि बहुत-सी बातें शामिल हैं । ये ऐसी बातें हैं जो हर इनसान जानता है । पाकीज़ा औरतें इन बातों में भी पेश-पेश थीं । हम इस बात को छोड़ते हैं, मगर इतना ज़रूर गुज़ारिश करते हैं कि महबूबे आलम (सल्ल०) की सबसे बड़ी यादगार आपका दीन है । सहाबा (रज़ि०) और सहाबियात (रजि०) ने इस दीन की हिफ़ाज़त के लिए जान, माल, औलाद यानी अपना सब कुछ क़ुरबान कर रखा था । जहाँ जिस चीज़ की ज़रूरत होती थी, पेश कर देती थीं ।

तबूक की लड़ाई के मौक़े पर आप ने मदद माँगी तो उन्होंने अपने ज़ेवर उतार-उतार कर फेंकने शुरू कर दिए । यहाँ तक कि जिसके पास एक छल्ला था वह भी उसने उतार कर दे दिया । फ़िदाकारी और औलाद को आप (सल्ल०) पर न्योछावर करने के हालात इसी सिलसिले में पहले बयान किए जा चुके हैं ।



कुरआन पर अमल

हम देखते हैं कि क़ुरआन अगर याद भी किया जाता है तो इसलिए कि नमाज़ों में उसकी आयतें पढ़ सकें । उन आयतों के मानी और मतलब और उन पर अमल करना हममें से बहुत ही कम लोगों का मक़सद होता है । हालाँकि हुज़ूर (सल्ल०) के ज़िम्मे यह काम था कि अल्लाह की ओर से जो कुछ आप (सल्ल०) पर उतरा हो, वह आप दूसरों को सुना दें, समझा दें और अमल करके बता-सिखा दें ।

क़ुरआन को समझने और उस पर अमल करने का जज़्बा जिस तरह सहाबा (रज़ि०) में था, उतना ही जज़्बा सहाबी औरतों में भी था । इस मामले में हज़रत आइशा (रज़ि०) का यह हाल था कि जो आयत नाज़िल होती, उसे हुज़ूर (सल्ल०) से अच्छी तरह समझ लेतीं और फिर क़ुरआन के मुताबिक़ अमल शुरू कर देतीं । मिसाल के तौर पर सिर्फ़ एक बात पेश की जाती है । जब यह आयत नाज़िल हुई कि—

"जो भी कोई बुराई करेगा, उसको उसका बदला दिया जाएगा ।"

(क़ुरआन 4:123)

तो हज़रत आइशा (रज़ि०) ने हुज़ूर (सल्ल०) से अर्ज़ किया कि यह आयत तो बड़ी सख़्त है । फिर यह आयत पढ़ी—

"अल्लाह तआला ज़रा-ज़रा-सी बुराई का भी हिसाब लेगा ।"

(क़ुरआन 99:8)

हुज़ूर (सल्ल०) ने समझाया कि इसका मतलब यह है कि अल्लाह का बन्दा जो कुछ करेगा वह सब अल्लाह के सामने पेश होगा । लेकिन अज़ाब में वह फँसेगा, जिसके हिसाब में जिरह शुरू हो गई ।

यह बात जब मर्दों और औरतों ने सुनी तो यह हाल था कि हर वक़्त यह ख़याल रखा जाता कि कोई काम और कोई बात क़ुरआन के ख़िलाफ़ न हो । समाज में जो रस्में राइज थीं, उनके ख़िलाफ़ अल्लाह की तरफ़ से हुक्म आया तो फिर वे रस्में कितनी ही पसन्दीदा क्यों न होतीं, फ़ौरन छोड़ दी जाती थीं ।

मुँह बोले बेटे की रस्म अरब में ऐसी थी कि जो शख़्स किसी को अपना बेटा बना लेता तो उसे असली बेटा समझा जाने लगता था । लेकिन जब क़ुरआन की यह आयत उतरी कि उनको सगे बापों का बेटा कहकर पुकारो । अल्लाह तआला

ने ले-पालक की रस्म को तोड़ दिया तो मुसलमानों ने मुँह बोले बेटे को असल बेटा समझना छोड़ दिया और इस पर सख़्ती से अमल किया गया । बहुत-सी मिसालें हैं, सिर्फ़ एक मिसाल सुनिए—

हज़रत अबू हुज़ैफ़ा (रज़ि०) ने हज़रत सालिम (रज़ि०) को मुँह बोला बेटा बना लिया था । उनके घर में हज़रत सालिम (रज़ि०) को असल बेटे का मक़ाम हासिल था । हज़रत अबू हुज़ैफ़ा की बीवी असल माँ के बराबर थीं । खुली बात है कि माँ से परदा कैसा ? लेकिन ले-पालक की रस्म तोड़ दी गई तो हज़रत अबू हुज़ैफ़ा (रज़ि०) की बीवी हुज़ूर (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और अर्ज़ किया कि अब मुझे क्या करना चाहिए ? आपने फ़रमाया कि उनको दूध पिला दो वे तुम्हारे रज़ाई बेटे (दूध शरीक बेटे) हो जाएँगे और फिर परदा करने की ज़रूरत नहीं रहेगी ।

परदे का हुक्म आने से पहले औरतें यूँ ही सिरों पर दुपट्टा डाल लिया करती थीं जिससे न सिर छिपता था न सीना । लेकिन जब परदे की ये आयतें नाज़िल हुईं कि 'औरतों को चाहिए अपने दुपट्टों को सीने पर डाल लें' (क़ुरआन 24:31) तो उन्हीं औरतों की यह हालत हो गई थी कि काली चादरों में लिपटी हुई इस तरह निकलती थीं कि हज़रत आइशा (रज़ि०) की रिवायत के मुताबिक़ ऐसा मालूम होता था गोया उनके सिर कौओं के घोंसले बन गए ।

फिर जब यह हुक्म आया कि औरतें ऐसे ज़ेवर न पहनें जिनकी झनकार से लोगों का ध्यान उधर खिंचे तो औरतों ने लड़कियों के पैरों के घुँघरू भी निकाल फेंके ।

एक बार एक लड़की घुँघरू पहने हुए हज़रत आइशा (रज़ि०) की ख़िदमत में हाज़िर हुई । घुँघरू की आवाज़ सुनी तो फ़रमाया— "रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि जिस घर में ऐसे ज़ेवरों की आवाज़ें आती हों उस घर में फ़रिश्ते नहीं आते ।" यह मालूम होने के बाद औरतों ने बच्चों को घुँघरू पहनाना छोड़ दिया ।

ऐसी बातें या चीज़ें जिनके बारे में शक हो कि हराम हैं या हलाल, जिनके बारे में क़ुरआन में साफ़ और खुला आदेश नहीं है; लेकिन जब नबी (सल्ल०) ने बता दिया है कि गुनाह एक चरागाह है, जो इनसान चरागाह के आस-पास जाएगा तो मुमकिन है उसके जानवर उस चरागाह में मुँह डाल दें । अच्छा है कि ऐसी चरागाहों के पास न जाया जाए । जिस बात में शक हो, उसे छोड़कर उस बात को अपनाओ जिसमें शक नहीं है ।

इसके बाद सहाबियात (रज़ि०) ने बड़ी सख़्ती के साथ इस पर अमल किया ।

एक सहाबिया (रज़ि०) ने एक लौण्डी को माँ पर सदक़ा कर दिया । माँ की मौत हो गई तो सहाबिया को शक हुआ कि अब यह लौण्डी रखना जायज़ है या नहीं । वे हुज़ूर (सल्ल०) के पास गईं और फ़तवा पूछा । आप (सल्ल०) ने फ़रमाया— "तुम माँ की वारिस हो, उसकी लौण्डी तुम्हारे लिए जायज़ है और तुम्हें सवाब भी मिल चुका है ।"

हज़रत असमा (रज़ि०) की माँ क़तीला ने इस्लाम क़बूल नहीं किया था । उनको हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने क़ुरआन का हुक्म आने के बाद तलाक़ दे दी थी । वे मक्का में रहती थीं । एक बार वे बेटी से मिलने मदीना आईं और बेटी के लिए तोहफ़ा लाईं । हज़रत असमा (रज़ि०) को शक हुआ कि यह तोहफ़ा मेरे लिए जाएज़ है या नहीं । हुज़ूर (सल्ल०) से इसके बारे में पूछा । आपने तोहफ़ा लेने की इजाज़त दे दी ।

हम लोगों में आदत है कि बात-बात पर क़समें खाते हैं । उनमें ऐसी भी क़समें होती हैं जिन पर कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) ज़रूरी हो जाता है, लेकिन हम परवा नहीं करते । क़सम के कफ़्फ़ारे का हुक्म आने के बाद सहाबियात इसका बड़ा ध्यान रखती थीं । एक बार हज़रत आइशा (रज़ि०) अपने भाँजे अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि०) से नाराज़ हो गईं । क़सम खा ली कि उनसे बात नहीं करेंगी । लेकिन जब हज़रत अब्दुल्लाह ने माफ़ी माँगी और बड़े-बड़े सहाबा (रज़ि०) ने सिफ़ारिश की तो माफ़ कर दिया । लेकिन क़सम के कफ़्फ़ारे में चालीस ग़ुलाम आज़ाद किए ।

यहाँ पर यह अर्ज़ कर दिया जाए तो ज़्यादा अच्छा होगा कि हज़रत आइशा (रज़ि०) क्यों ख़फ़ा हो गईं थीं । बात यह थी कि हज़रत अब्दुल्लाह उनको ख़र्च के लिए कुछ रक़म दिया करते थे । हज़रत आइशा (रज़ि०) बड़ी दानशील थीं । वे रक़म आते ही ख़ैरात कर दिया करती थीं । इस पर हज़रत अब्दुल्लाह की ज़बान से एक बार निकल गया कि कहाँ तक दूँ, बस नाराज़गी का सबब यही था ।

अच्छी आदतें

क़ुरआन पर अमल करने से पाकीज़ा औरतों में बड़ी पाकीज़ा आदतें पैदा हो गई थीं । उनमें ईसार, क़ुरबानी, फ़य्याज़ी, शर्म व हया, सच्चाई, जनसेवा, सब्र, परहेज़गारी और ऐसी ही दूसरी तमाम अच्छी आदतें पैदा हो गई थीं । वे इतनी ग़ैरतदार हो गईं थीं कि माँ-बाप से भी कुछ माँगने में उन्हें शर्म आती थी ।

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) हज़रत अली (रज़ि०) के साथ बड़ी ग़रीबी की ज़िन्दगी गुज़ारती थीं । चक्की पीसना, पानी भरना और घर के सारे काम-काज उनको करने

पड़ते थे । एक बार हज़रत अली (रज़ि०) ने मशविरा दिया कि हुज़ूर (सल्ल०) के पास जाओ और एक लौण्डी के लिए अर्ज़ करो । हज़रत अली (रज़ि०) के कहने से हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) हुज़ूर (सल्ल०) के पास गईं, लेकिन शर्म के मारे कुछ कह न सकीं और ख़ाली हाथ लौट आईं ।

ईसार और कुरबानी

दूसरों को फ़ायदा पहुँचाना और अपनी ख़्वाहिश को रोक लेना जैसी ख़ूबी का नाम ईसार और कुरबानी है । अच्छी बातों में इसका बहुत ऊँचा मक़ाम है । सहाबियात (पाकीज़ा औरतों) में ईसार और कुरबानी का जज़्बा बहुत था । इस सिलसिले में क़िस्से तो बहुत हैं, लेकिन हम इसका एक बेहतरीन नमूना पेश करते हैं ।

जब हुज़ूर (सल्ल०) का इन्तिक़ाल हुआ तो आप हज़रत आइशा (रज़ि०) के हुजरे (कमरे) में दफ़्न हुए । फिर हज़रत आइशा (रज़ि०) के वालिद बुज़ुर्गवार हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हुआ तो वे भी इसी हुजरे में दफ़न हुए । अब सिर्फ़ एक क़ब्र की जगह बची थी, उसे हज़रत आइशा (रज़ि०) ने अपने लिए महफ़ूज़ कर रखा था । जज़्बा यह था कि शौहर और बाप के पास ही उनकी भी क़ब्र बने ।

अब सुनिए ! जब हज़रत उमर (रज़ि०) ज़ख़्मी हुए और ज़िन्दगी की उम्मीद नहीं रही, तो उन्होंने हज़रत आइशा (रज़ि०) से कहा— "मेरी ख़्वाहिश है कि मैं अपने दो प्यारों के पास दफ़न होऊँ ।" इस माँग को सुनकर हज़रत आइशा (रज़ि०) ने हसरत भरे लहजे में कहा— "यह जगह तो मैंने अपने लिए रखी थी, मगर उमर (रज़ि०) की ख़्वाहिश को रद्द न करूँगी ।"

हज़रत उमर (रज़ि०) की क़ब्र भी उसी हुजरे में बन गई और हज़रत आइशा (रज़ि०) दूसरे हुजरे में चली गईं । (सुब्हानल्लाह)

हज़रत फ़ातिमा का मशहूर वाक़िआ है । दो दिन से फ़ाक़ा था । हसन-हुसैन बच्चे थे, वे भी भूखे थे । दूसरे दिन शाम को हज़रत अली (रज़ि०) मेहनत मज़दूरी करके कुछ अनाज लाए । हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) ने पीसा और रोटियाँ पकाईं । फिर सबको लेकर खाना खाने बैठीं । अभी निवाला तोड़ा ही था कि दरवाज़े पर फ़क़ीर ने आवाज़ लगाई, अल्लाह भला करे । हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) ने खाना फ़क़ीर को दे दिया और ख़ुद शौहर और बच्चों को पानी पिलाकर सुला दिया ।

लिखते-लिखते बहुत-से वाक़िआत याद आते जा रहे हैं । एक दिन हज़रत आइशा (रज़ि०) का रोज़ा था । हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि०) ने उस दिन

दस हज़ार दिरहम भेजे । आदत के मुताबिक़ ख़ैरात करने लगीं । जब आख़िरी थैली भी ख़ैरात कर दी तो लौण्डी ने याद दिलाया कि आपका रोज़ा है और आपने अपने लिए कुछ नहीं रखा । फ़रमाया— "पहले क्यों नहीं याद दिलाया और दामन झाड़कर उठ गईं ।"

एक बड़ी ही और सबक़ आमोज़ घटना सुनिए, इसके बाद दूसरी बातें पेश करूँगा । हुज़ूर (सल्ल०) के चचा हज़रत हमज़ा (रज़ि०) जंगे उहुद में शहीद हुए, उनकी बहन हज़रत सफ़िया (रज़ि०) उनके लिए दो कफ़न लाईं । लाश के पास पहुँचीं तो देखा कि एक अनसारी भी शहीद पड़ा है । अपने बेटे ज़ुबैर (रज़ि०) से कहा कि बड़ी चादर अनसारी को दे दो और छोटी मेरे भाई को । इस छोटी चादर से हज़रत हमज़ा (रज़ि०) का सिर छिपाया जाता तो पैर खुल जाते, पैर छिपाए जाते तो सिर खुल जाता । सिर छिपा दिया गया और पैरों को घास से ढक दिया गया ।

हज़रत सफ़िया (रज़ि०) ने भाई का मरसिया (शोक गीत) कहा । एक शेर में फ़रमाती हैं— "वह (यानी हज़रत हमज़ा रज़ि०) ऐसा फ़य्याज़ और ईसार करनेवाला है कि मरने के बाद भी अपने पड़ोसी को न भूला ।"

अरब के बड़े-बड़े शायरों ने यह शेर सुना तो माना कि ख़ुदा की क़सम, फ़य्याज़ी के बारे में इससे अच्छा शेर नहीं सुना ।

फ़य्याज़ी के दो दिलचस्प क़िस्से

एक बार हज़रत मुनकदिर बिन अब्दुल्लाह (रज़ि०) हज़रत आइशा (रज़ि०) के पास आए । हज़रत आइशा (रज़ि०) ने पूछा— "मुनकदिर क्या तुम्हारा कोई बच्चा है ?" अर्ज़ किया, "उम्मुल मोमिनीन मैं ख़ुद बच्चा हूँ ।" बोलीं, "मेरे पास दस हज़ार दिरहम होते तो मैं तुम्हें देती और तुम शादी करते ।" इत्तिफ़ाक़ की बात उसी शाम दस हज़ार दिरहम आ गए । हज़रत आइशा (रज़ि०) ने मुनकदिर (रज़ि०) को दे दिए, उन्होंने शादी की और बाद में उनके कई बच्चे भी हुए ।

हुज़ूर (सल्ल०) की बीवियों में एक से बढ़कर एक दानी थीं । लेकिन उम्मुल मोमिनीन हज़रत ज़ैनब बिन्ते जुहश (रज़ि०) सबसे बाज़ी ले गईं । वे अपने हाथ से चमड़ा पकाकर साफ़ करती थीं । इससे जो मज़दूरी मिलती, सब ग़रीबों में बाँट देतीं । एक बार तमाम उम्मुल मोमिनीन (रज़ि०) हुज़ूर (सल्ल०) के पास बैठी थीं । आपने फ़रमाया— "तुममें से जिसका हाथ सबसे ज़्यादा लम्बा होगा वह मेरे मरने के बाद मुझसे सबसे पहले मिलेगी ।"

यह सुनकर सब एक-दूसरे से हाथ नापा करती थीं । हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के हाथ सबसे छोटे थे । लेकिन हुज़ूर (सल्ल०) की वफ़ात के बाद जब सबसे पहले हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) का इंतिक़ाल हुआ तो लोगों ने समझा कि लम्बे हाथों वाली से मुराद फ़य्याज़ के हैं ।

माफ़ करना

माफ़ कर देना और रंजिश को ख़त्म कर देना वह ख़ूबी है जो आदमी के दर्जे बुलन्द कर देती है, लेकिन यह बात आसान भी नहीं है । छोटी-छोटी बातें हों या मजबूरी हो तो बात को ख़त्म कर देते हैं लेकिन इज़्ज़त व आबरू और अपने किसी अज़ीज़ के क़त्ल को ऐसे ही लोग माफ़ करते हैं जिनको अल्लाह ने बड़ा दिल और हिम्मत अता की हो। नबी करीम (सल्ल०) में तो यह ख़ूबी पूरे तौर पर पाई जाती है । लेकिन हम देखते हैं कि हुज़ूर (सल्ल०) से जिन बुज़ुर्गों ने अख़लाक़ सीखा, वे भी इस ख़ूबी में बहुत आगे नज़र आते हैं । हम इस समय दो क़िस्से ऐसे सुनाते हैं जिनको माफ़ कर देना उन्हीं पाकीज़ा औरतों का हिस्सा था, जिन्हें अल्लाह ने तौफ़ीक़ दी थी ।

1. हज़रत आइशा (रज़ि०) पर जो तोहमत लगाई गई थी, जिसका ज़िक्र क़ुरआन में भी है और आम किताबों में भी पूरा ज़िक्र मिलता है, ऐसे मौक़े पर हर आदमी जो अपने बराबर के आदमी और सामनेवाले को आसानी के साथ ज़लील कर सकता है, करता है । लेकिन उम्मुल मोमिनीन हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) को हम देखते हैं कि वे हज़रत आइशा (रज़ि०) की सौतन थीं, और हज़रत आइशा (रज़ि०) के बराबर ही नहीं बल्कि रिश्ते के एतबार से कुछ बढ़कर थीं । वह हुज़ूर (सल्ल०) की बहन भी लगती थीं । उनको मालूम था कि नबी (सल्ल०) हज़रत आइशा (रज़ि०) को बहुत चाहते हैं । हज़रत आइशा (रज़ि०) पर तोहमत लगाने के मौक़े पर वह हज़रत आइशा (रज़ि०) को एक इशारे पर नीचा दिखा सकती थीं । लेकिन जब उनसे पूछा गया तो इस तरह गवाही दी—

> "मैं अपने कानों और आँखों की पूरी हिफ़ाज़त करती हूँ, यानी मेरे कान ठीक बात सुनते हैं और मेरी आँखें ग़लत चीज़ नहीं देखती हैं ।"

इस गवाही के बारे में हज़रत आइशा (रज़ि०) ख़ुद कहती हैं कि अगरचे मेरे बराबर की और मेरी हरीफ़ थीं लेकिन उनके तक़्वा ने उन्हें बचा लिया ।

2. दूसरा वाक़िआ ख़ुद हज़रत आइशा (रज़ि०) के माफ़ करने का है । मुआविया बिन ख़दीज़ (रज़ि०) एक फ़ौजी अफ़्सर थे । उन्होंने हज़रत आइशा (रज़ि०) के

भाई मुहम्मद बिन अबू बक्र (रज़ि०) को क़त्ल कर दिया । इस हादसे का असर माँ पर भी था और हज़रत आइशा (रज़ि०) पर भी । लेकिन एक जंग से हज़रत मुआविया बिन ख़दीज (रज़ि०) वापस आए तो हज़रत आइशा (रज़ि०) ने लोगों से पूछा कि तुम्हारे साथ मुआविया का कैसा सुलूक रहा । जवाब मिला—"सब लोग उनकी तारीफ़ करते हुए पाए गए । उनमें कोई ऐब नज़र न आया । अगर किसी का ऊँट खो जाता तो वह उसकी जगह दूसरा ऊँट दे देते थे । अगर किसी का ग़ुलाम भाग जाता तो दूसरा ग़ुलाम दे देते थे ।"

यह सुना तो हज़रत आइशा (रज़ि०) ने 'अस्तग़फ़िरुल्लाह' कहा और बोलीं, "मैंने नबी (सल्ल०) से सुना है कि जो आदमी मेरी उम्मत के साथ नर्मी और मुहब्बत का बरताव करता है, उसके साथ नर्मी और मुहब्बत करो । और जो ऐसे आदमी पर सख़्ती करे तो उसकी हिमायत में उस पर सख़्ती करो जो ऐसे आदमी पर सख़्ती करता है; तो फिर मेरे लिए ठीक नहीं कि मैं अपने भाई के मामले में मुआविया (रज़ि०) से नफ़रत रखूँ ।"

देखा आपने, ऐसी थीं हमारी बुज़ुर्ग माएँ । अगर हम उनको अपने लिए नमूना बनाएँ तो अल्लाह की नज़र में हम कितना ऊँचा मक़ाम हासिल कर सकते हैं ।

मेहमान की ख़ातिर

मेहमानों का मामला ऐसा होता है जिसका सम्बन्ध ज़्यादातर औरतों ही से होता है । कभी-कभी ऐसा भी होता है कि औरतें मेहमानों की वजह से घबरा जाती हैं, लेकिन सहाबी औरतों के क़िस्सों में हमें कोई ऐसी बात नहीं मिलती । हज़रत उम्मे शुरैक (रज़ि०) के बारे में लिखा है कि उन्होंने घर को मेहमान ख़ाना बना रखा था । हुज़ूर (सल्ल०) के पास जो मेहमान आता वह ज़्यादातर उन्हीं के यहाँ ठहरता था ।

इस सिलसिले में निहायत दिलचस्प और नसीहतों से भरा हुआ वाक़िया हज़रत उम्मे सुलैम (रज़ि०) का है । एक बार हुज़ूर (सल्ल०) के पास दो मेहमान आए । आप (सल्ल०) ने अपने घर कहला भेजा । जवाब आया कि बरकत ही बरकत है तो अपने सहाबा की तरफ़ देखा और फ़रमाया— "कौन इनको मेहमान रखेगा ।" उम्मे सुलैम (रज़ि०) के शौहर हज़रत अबू तलहा (रज़ि०) ने अर्ज़ किया— "ऐ अल्लाह के रसूल ! मैं ।"

हज़रत अबू तलहा (रज़ि०) दोनों को घर ले गए । उम्मे सुलैम (रज़ि०) से कहा तो मालूम हुआ कि सिर्फ़ बच्चों का खाना रखा है । वह खाना मेहमानों

को इस तरह खिलाया गया कि चिराग़ बुझा दिया गया और खाना मेहमानों के आगे रखा गया। हज़रत अबू तलहा (रज़ि०) भी शामिल हुए मगर उम्मे सुलैम (रज़ि०) की बताई हुई तरकीब काम में लाते रहे; यानी हाथ थाली तक ले जाते और फिर खाली हाथ मुँह के पास ले जाते क्योंकि ख़ाना सिर्फ़ बच्चों के खाने भर था। इसलिए सारा खाना मेहमानों के सामने थाली में रख दिया था। मेहमानों ने समझा कि वे भी खा रहे हैं। इस तरह मेहमानों को खाना खिलाकर रुख़्सत किया। सुबह को हुज़ूर (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए तो आपने फ़रमाया— "अबू तलहा ! तुम्हारे घर मेहमानों को जिस तरह रखा गया उसकी ख़बर अल्लाह ने मुझे दी।"

ग़ैरत

ग़ैरत और ख़ुद्दारी की सिफ़त भी बहुत बड़ी सिफ़त है। लोगों में यह सिफ़त बहुत कम पाई जाती है। जब जान पर बनती है या इज़्ज़त पर चोट आती है या कोई ग़रज़ सामने आती है, तो बड़े-बड़ों के क़दम डगमगा जाते हैं। लेकिन पाकीज़ा औरतों के दो-एक नमूने देखिए—

हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि०) हज्जाज बिन यूसुफ़ से एक जंग लड़ रहे थे। उस जंग में वे शहीद हुए। शहादत से पहले अपनी माँ हज़रत अस्मा (रज़ि०) के पास गए और जंग का नक़्शा बताया तो माँ ने कहा—

> "बेटा ! अगर तू हक़ पर है तो तुझे शोभा नहीं देता कि अपने साथियों को छोड़कर अपनी जान बचा ले और कोई ऐसी शर्त स्वीकार कर ले जो ग़ैरत और ख़ुददारी के ख़िलाफ़ हो। ख़ुदा की क़सम, हक़ के लिए तलवार खाकर मर जाना इससे बेहतर है कि ज़िल्लत के कोड़े उम्र भर बरसते रहें। और अगर तू हक़ पर नहीं है और यह जंग लड़ रहा है तो तूने अपने आपको भी तबाह किया और अपने साथियों को भी ले डूबा। जा ! शेर होकर लड़, लोमड़ी न बन।"

एक बार एक सहाबिया (जो बूढ़ी हो चुकी थीं) हज़रत मुआविया बिन अबी सुफ़ियान (रज़ि० के पास उस ज़माने में गईं जब वे ख़लीफ़ा हो चुके थे। यह बात सबको मालूम है कि हज़रत मुआविया (रज़ि०) और हज़रत अली (रज़ि०) में बड़ी कशमकश चली थी। जब यह सहाबिया (रज़ि०) हज़रत मुआविया (रज़ि०) के पास पहुँचीं तो उन्होंने बड़े सटीक शब्द कहकर उन पर चोट की। कहा— "मुआविया! गाय का दूध ग्वाले ले गए, बछड़ा भूखा रह गया।" मतलब यह था कि आपकी हुकूमत में जनता भूखी है और आपके रिश्तेदार मज़े कर रहे हैं।

हज़रत मुआविया (रज़ि०) के अन्दर बड़ा सब्र और बरदाश्त थी, उन्होंने इस चोट को मुस्कराकर बरदाश्त कर लिया। बोले— "आपको कौन-सी ज़रूरत यहाँ तक लाई है ?" बोलीं, "इसलिए कि आपको ख़ुदा के ख़ौफ़ से डराऊँ।" फिर पूछा गया, "आपको कोई ज़रूरत हो तो फ़रमाएँ।" बोलीं, "आपके पास क्या है जो देंगे ?"

फिर पूछा, "अली (रज़ि०) के बारे में क्या कहती हो ?" बताया, "वह अल्लाह का एक बन्दा है। रातों को जागनेवाला दिन में जिहाद करनेवाला। अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) उससे मुहब्बत करते थे। आपको शोभा नहीं देता कि आप उनकी बराबरी करें।" यह कहकर मुआविया के दरबार से चली आईं। हज़रत मुआविया (रज़ि०) ने कहा, "इस बूढ़ी औरत में इस्लामी ग़ैरत किस दरजा पाई जाती है !"

हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि०) के पति अबू सलमा (रज़ि०) शहीद हुए तो हुज़ूर (सल्ल०) ने निकाह का पयाम दिया। उम्मे सलमा (रज़ि०) ने अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ! मेरे अन्दर ग़ैरत बहुत ज़्यादा है।" हुज़ूर (सल्ल०) ने यक़ीन दिलाया कि तुम्हारी ग़ैरत की हिफ़ाज़त की जाएगी। इस यक़ीन पर निकाह हो गया।

सब्र की ख़ूबी

लोग सब्र का मतलब ग़लत समझते हैं कि मजबूरी का नाम सब्र है। जबकि सब्र का सही मतलब है— 'अपने मक़ाम पर मज़बूती के साथ जमे रहना।' अगर अल्लाह आराम और ख़ुशहाली दे दे तो ऐश में पड़कर अपने अख़लाक़ को बरक़रार रखें, ख़ुदा को न भूलें, घमण्ड न करें, दूसरों पर ज़ुल्म न करें और अगर मुसीबत व तकलीफ़ आ पड़े तो हाय-वावेला न करें, ख़ुदा को याद करें और अपने मक़ाम से न गिरें। इस सिलसिले में किताबों में लिखा है कि जिहाद में सब्र की सिफ़त काम देती है, यानी हार के आसार हों तो भी सब्र करें और दुश्मन का जमकर मुक़ाबिला करें। देखिए—

उहुद की लड़ाई में जब मुसलमानों में भगदड़ मची तो हुज़ूर (सल्ल०) अपने मक़ाम पर पहाड़ की तरह जमे रहे। इस जंग में हुज़ूर (सल्ल०) ने उम्मे अम्मारा (रज़ि०) के सब्र की तारीफ़ इस तरह की— "वे मेरे आस-पास परवाने की तरह फिर रही थीं और दुश्मनों से जंग कर रही थीं।"

यही उम्मे अम्मारा के बेटे ज़ख़्मी होकर गिरे तो बोलीं, "उठ और अपनी जगह

खड़ा हो । अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की हिफ़ाज़त में लड़ ।" हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उम्मे अम्मारा ! तेरे जैसा सब्र और तेरे जैसी ताक़त दूसरों में कहाँ है ।"

मुहम्मद बिन अबू बक्र (रज़ि०) को एक जंग में क़त्ल कर दिया गया । यह बात माँ ने सुनी तो कोई बात बेसब्री की मुँह से न निकाली । दुश्मन को कोसा तक नहीं, नमाज़ की नीयत करके खड़ी हो गईं ।

हज़रत अबू तलहा (रज़ि०) का लड़का मर गया । वह उस वक़्त घर में नहीं थे । उम्मे सुलैम (रज़ि०) ने बच्चे को कफ़ना कर कोठरी में रख दिया । अबू तलहा (रज़ि०) घर आए । बच्चे का हाल पूछा । कहा, "आराम से लेटा है ।" फिर शौहर को खाना खिलाया, इसके बाद बोलीं, "अबू तलहा अमानत के बारे में क्या ख़याल है, अगर अमानत रखनेवाला अपनी चीज़ माँगे तो ?"

बोले, "तो ख़ुशदिली से अमानत वापस कर देना चाहिए ।" अब उम्मे सुलैम (रज़ि०) ने कहा, "अच्छा, तो तुम्हारा बच्चा अल्लाह की अमानत था । उसे अल्लाह ने ले लिया ।"

यह सुना तो अबू तलहा (रज़ि०) बोले, "ख़ुदा की क़सम ! उम्मे सुलैम मैं सब्र में तुम से पीछे न रहूँगा । मैं अल्लाह की हर मरज़ी पर राज़ी हूँ ।"

सहाबियात जो इस्लाम लाने के सबब सताई गईं और शहीद की गईं उनमें सब्र की ही ताक़त थी जिसने उनको बुलन्द किया । इनका ज़िक्र हम पिछले पन्नों में कर चुके हैं ।

उहुद की लड़ाई में इस्लाम के मशहूर सिपाही शहीदों के सरदार हज़रत अमीर हमज़ा (रज़ि०) शहीद हो गए, दूसरे लोग भी शहीद हुए । मदीने में अनसार औरतें अपने क़त्ल हुए संबंधियों पर नौहा यानी रोना-पीटना कर रही थीं । हुज़ूर (सल्ल०) मदीने में आए तो बोले— "आज हमज़ा (रज़ि०) पर रोनेवाला कोई नहीं ।" यह सुनते ही अनसारी औरतों ने अपने मक़्तूलों पर जो क़त्ल कर दिए गए थे, सब्र किया और हमज़ा (रज़ि०) पर नौहा करने लगीं ।

हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया— "शोक तीन दिन का है । नौहा करते वक़्त हायवावेला करना और बाल और मुँह नोचना ठीक नहीं ।" औरतों ने इस हुक्म पर पूरा-पूरा अमल किया ।

हुज़ूर (सल्ल०) की फूफी हज़रत सफ़िया (रज़ि०) ने भाई हज़रत हमज़ा (रज़ि०) की शहादत की ख़बर सुनी तो वे देखने चलीं । हुज़ूर (सल्ल०) ने जाते देख लिया ।

उनके बेटे ज़ुबैर (रज़ि०) से कहा कि मक्के की औरतों ने हमज़ा (रज़ि०) की लाश को बिगाड़ दिया है, कान और नाक काटकर ज़ेवर बनाया है। ऐसी हालत में अपनी माँ को रोको और सब्र की नसीहत करो । हज़रत ज़ुबैर (रज़ि०) माँ के पास गए और रसूल (सल्ल०) का पैग़ाम सुनाया । बोलीं— "अल्लाह देख लेगा, आज मैं जैसा सब्र करूँगी ।" यह कहकर हज़रत हमज़ा (रज़ि०) की लाश के पास पहुँचीं । लाश की हालत देखी न जाती थी । हज़रत सफ़िया (रज़ि) ने 'इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन' पढ़ी और दो कफ़न ज़ुबैर (रज़ि०) को देकर वापस हो गईं ।

इसी जंग में हज़रत हिमना बिन्ते जहश (चचेरी बहन) को हुज़ूर (सल्ल०) ने इस तरह मुख़ातब किया, "हिमना ! अपने भाई अब्दुल्लाह बिन जहश (रज़ि०) पर सब्र करो ।" वे समझ गईं कि भाई भी शहीद हो गया । उन्होंने 'इन्ना लिल्लाहि' पढ़ी । हुज़ूर (सल्ल०) ने फिर फ़रमाया–"हिमना ! अपने मामूँ हमज़ा पर सब्र करो ।" वे समझ गईं कि हमज़ा (रज़ि०) भी शहीद हो गए । उन्होंने फिर 'इन्नालिल्लाहि' पढ़ी । शहीदों के लिए बख़शिश की दुआ की और वापस हो गईं ।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि०) हज्जाज बिन यूसुफ़ से जंग करते हुए शहीद हुए । हज्जाज ने उनकी लाश सूली पर लटकवा दी । हज़रत असमा बिन्ते अबू बक्र (रज़ि०) बेटे की लाश देखने गईं । मालूम हुआ कि लाश अब तक सूली पर लटकी है । हज्जाज से बोलीं— "यह सवार अभी तक घोड़े से नहीं उतरा ।"

हज्जाज अरबी ज़बान (भाषा) का बड़ा आलिम आदमी था । उसने हज़रत असमा (रज़ि०) की ज़बान से यह साहित्यिक वाक्य सुना तो अपने होंट चबाकर रह गया । हज़रत असमा (रज़ि०) के पास आया और ज़बान लड़ाने लगा । बोला– "तुम्हारे बेटे अब्दुल्लाह (रज़ि०) ने काबे में बैठकर ख़ूँरेज़ी कराई, इसलिए उस पर अल्लाह का अज़ाब आया ।" जवाब दिया, "तू झूठा है । मेरा लड़का नाफ़रमान न था । वह रोज़ा रखनेवाला, तहज्जुद पढ़नेवाला, परहेज़गार, दीनदार और माँ-बाप का फ़रमाबरदार था । मगर तू अपने बारे में सुन— मैंने रसूल (सल्ल०) से सुना है कि क़बीला सक़ीफ़ में दो नालायक़ आदमी पैदा होंगे । उनमें पहला बहुत बड़ा झूठा और दूसरा ज़ालिम होगा । बहुत बड़े झूठे (मुख़तार सक़फ़ी) को देख चुकी हूँ और ज़ालिम इस वक़्त मेरे सामने है ।"

यह जवाब सुनकर हज्जाज झल्ला गया । फिर ढिठाई से बोला, "मैंने तुम्हारे बेटे के साथ यह सब किया है ।" जवाब मिला, "तूने मरे बेटे की दुनिया ख़राब की, मेरे बेटे ने तेरी आख़िरत बरबाद की ।"

घरेलू ज़िन्दगी

पाकीज़ा औरतें, जिनके ईमान व इस्लाम और मज़हबी ख़िदमात के बारे में हम लिख रहे हैं और उनके किरदार के नमूने पेश कर रहे हैं, उनका तरीक़ा यह था कि वे इस्लाम क़बूल करने के बाद सबसे पहले और सबसे ज़्यादा अपने घर के सुधार पर ज़ोर दिया करती थीं । वे समझती थीं कि अगर घर ही का सुधार ठीक से न हो सका तो बाहर के लोगों में भी इस्लाह का काम ठीक से न हो सकेगा । और इसका असर भी वैसा न होगा जो होना चाहिए । वह जो "क़ू अनफ़ुसकुम व अहलीकुम नारा" मर्दों के लिए हुक्म है कि 'तुम अपने को और अपने घरवालों को जहन्नम की आग से बचाओ ।' इसकी रौशनी में पाकीज़ा औरतें अपनी ज़िम्मेदारियाँ समझती थीं कि वे बाल-बच्चों के सुधार और उनके अन्दर किसी भी ग़लती को दूर करने पर ज़्यादा ज़ोर दें क्योंकि घर के मर्द तो बाहर रहते हैं, दिन भर बाहर काम करते हैं और शाम को घर आते हैं । उनका वास्ता बच्चों से कम ही रहता है । इसलिए औरतों को ही घर सम्भालना है । शौहर के घर की चीज़ों की देख-भाल करनी है । घर को इस्लामी साँचे में ढालना है । चुनाँचे हम देखते हैं कि पाकीज़ा औरतें घर के सुधार में पूरी तरह सफल रहीं । उन्होंने घर को ख़ूब संभाला और अपने बाद आनेवाली औरतों के लिए बेहतरीन नमूना छोड़ा । नीचे हम इन्हीं नमूनों को सामने लाने की कोशिश करेंगे, लेकिन जैसा कि हमने कहा है— "ढेर में से एक मुट्ठी" पूरे ढेर के लिए नमूना होती है इसी तरह ये नमूने दिखाएँगे । हमारा मतलब यह है कि हम घरेलू ज़िन्दगी के एक-एक पहलू पर दो-एक ही बातें लिखेंगे । ज़्यादा फैलाव में नहीं जाएँगे । हमारा मक़्सद नसीहत हासिल करना है । वह हमें थोड़े वाक़ियात से भी हासिल हो सकती है, अगर अल्लाह तौफ़ीक़ दे ।

शौहर का सहयोग

घरेलू जीवन में सबसे अहम ज़िम्मेदारी शौहर की होती है । शौहर घर का वह सुतून है, जो अगर मज़बूत रहे तो घर मज़बूत रहता है और अगर वह कमज़ोर हो जाए, तो घर ढह जाने से बच नहीं सकता ।

शौहर की मज़बूती हर एतबार से— दीन-धर्म के एतबार से भी, रहन-सहन के एतबार से भी और माली हैसियत से भी क़ाबिले तरजीह है ।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि०)

मज़हब के एतबार से सबसे पहले हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) को देखिए। नबी करीम (सल्ल०) की पहली बीवी होने का शर्फ़ हासिल है। उनकी यह बड़ाई ऐसी है कि नबी (सल्ल०) उनके इन्तिक़ाल के बाद अकसर उनको इन लफ़्ज़ों में याद किया करते—

> "वे मेरी बेहतरीन बीवी थीं। उन्होंने मुझे अपना माल इसलिए दिया कि मैं उस माल से अल्लाह के दीन को मज़बूत करूँ।"

किताबों में लिखा हुआ है कि जब नबी (सल्ल०) मक्के के सरदारों के सामने इस्लाम पेश करते थे तो वे आपका मज़ाक़ उड़ाते और आपके दिल को दुख पहुँचाते थे। तरह-तरह से सताते थे। फिर जब घर आते तो ख़दीजा (रज़ि०) आपसे इस तरह बातें करतीं कि आपका ग़म जाता रहता। वे कहतीं, "ऐ अल्लाह के रसूल! आप हक़ पर हैं। अल्लाह ने चाहा तो दीन फैलकर रहेगा।"

इन्ही हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) का वाक़िआ है कि जब हुज़ूर (सल्ल०) पर पहली बार वह्य नाज़िल हुई और आपने फ़रिश्ते को देखा और नुबूवत पाकर अपनी ज़िम्मेदारी को महसूस किया तो घबराकर घर आए और हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) से सारा हाल कहा, तो उस बेहतरीन बीवी ने तुरन्त सच्चे होने की तसदीक़ की और दिलासा दिया कि आप बिलकुल न घबराएँ। उस बेहतरीन बीवी ने आप की ख़ूबियों को बयान किया और कहा कि अल्लाह आपकी हिफ़ाज़त करेगा।

इतना ही नहीं, अपने एक क़रीबी रिश्तेदार वरक़ा बिन नोफ़िल, जो उस वक़्त ख़ुदा की किताबों के आलिम माने जाते थे, उनके पास लेकर गईं और उनसे आप के दिल को ताक़त पहुँचाई।

फिर जब और जहाँ माल की ज़रूरत हुई, हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ने अपना ख़ज़ाना खोल दिया। आपको पूरा इतमीनान दिलाया कि आप तन-मन-धन से अल्लाह के दीन को आगे बढ़ाएँ, घर को मैं सम्भालती हूँ।

अगर कहीं हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की ओर से यह इतमीनान आपको न होता तो क्या वह कामयाबी आपको मिल पाती जो हम देखते हैं? लिखनेवालों ने एक बड़ी अच्छी मिसाल दी है। कहते हैं कि ख़दीजा (रज़ि०) की ख़िदमात ऐसी है जैसे दूध में घी होता है और सबसे ज़्यादा ताक़तवर हिस्सा वही होता है। या वह पानी जो ज़मीन के नीचे किसी पेड़ को नमी पहुँचाता है, लेकिन किसी को नज़र नहीं आता। यही हाल हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) का था। लिखते हैं कि मक्का के काफ़िर अपने लफ़्ज़ों के तीरों से हुज़ूर (सल्ल०) के दिल को ज़ख़्मी

कर दिया करते थे । हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) आपके ज़ख़्मी दिल पर अपनी बातों से मरहम रखती थीं । वे हुज़ूर (सल्ल०) की बेहतरीन सलाहकार भी थीं ।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) से आपकी चार बच्चियाँ पैदा हुईं । इनकें अलावा हज़रत अली (रज़ि०) भी उन्हीं के घर में रहते थे । इन सबकी देखभाल करना, परवरिश करना, उनको परवान चढ़ाना, यह सब हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ने अपने ज़िम्मे ले लिया था । बड़े होकर ये सब कैसे हुए ? क्या बने ? इस्लामी इतिहास की किताबों को पढ़नेवाले जानते हैं कि ये दीन के आसमान के रौशन सितारे बने । हज़रत अली (रज़ि०), हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) और हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) की दूसरी बहनों की ख़िदमात ऐसी नहीं कि इस्लामी तारीख़ उनको भुला दे । और कोई यह भी नहीं कह सकता कि उन सबको परवान चढ़ानेवाली बरकतों से भरी हुई ज़ात हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की नहीं थी ।

जो लोग दीन को फैलाने का काम करते हैं उनको तजुर्बा होगा कि अगर उनकी बीवी साथ न दे और दिन भर तरह-तरह के ग़म सहकर जब वे घर आएँ और बीवी ढाढ़स बँधाने के बदले अपना दुखड़ा ले बैठे तो उस ग़रीब शौहर का हाल क्या होता है । बेचारे को दिन में तारे नज़र आने लगते हैं ।

तारीख़ गवाह है कि हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ने क़दम-क़दम पर आज़माइश में आपका साथ दिया, यहाँ तक कि उनकी सेहत ने जवाब दे दिया और फिर वे ठीक न हो सकीं । अल्लाह को प्यारी हो गईं । जिस साल उनका इंतिक़ाल हुआ, नबी करीम (सल्ल०) उस साल को अपने लिए 'ग़म का साल' फ़रमाते हैं । हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के इंतिक़ाल के बाद ही वे ज़ुल्म आप पर ढाए गए, जिनका ज़िक्र किताबों में मिलता है । आपकी राह में काँटों का बिछाया जाना, आपको तकलीफ़ें देना, आपको क़त्ल करने की साजिशें करना, ये और इस तरह की सारी बातें हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल के बाद की हैं ।

अगर आज हमारी माएँ और बहनें अपने दीन फैलानेवाले शौहर का साथ दें तो आज भी दीन की तबलीग़ ज़्यादा से ज़्यादा हो सकती है । काश ! हमारी यह बात किसी औरत के दिल को छू ले ।

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०)

यह वे फ़ातिमा (रज़ि०) हैं जो हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की सबसे छोटी बेटी थीं । हज़रत अली (रज़ि०) से ब्याही गईं । हज़रत अली (रज़ि०) दीन फैलाने में नबी (सल्ल०) के अच्छे साथी और सिपाही थे । हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) ने

उनको भी घर के कामों से आज़ाद कर दिया था । घर की ज़रूरत के लिए पानी भरना और इस तरह भरना कि मशक लाने में आपके कंधों पर निशान पड़ गए थे, चक्की पीसना, खाना पकाना, कम से कम पैसों से घर का काम चलाना, ख़ुद दुख उठाना लेकिन शौहर को ढाढ़स बँधाना— ये वे बातें थीं कि ख़ुद हज़रत अली (रज़ि०) के दिल पर असर होता था । उन्होंने एक बार कहा भी कि फ़ातिमा ! हुज़ूर (सल्ल०) के पास जाओ, आजकल कुछ लौण्डी ग़ुलाम आए हैं । एक लौण्डी माँग लाओ । लेकिन फ़ातिमा (रज़ि०) की ग़ैरत देखिए कि हुज़ूर (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं, लेकिन ज़बान से कुछ न कह सकीं । जैसी गईं थीं, वैसी लौट आईं । फिर जब हुज़ूर (सल्ल०) को मालूम हुआ तो आपने लौण्डी देने के बदले बेटी को ये कलिमे पढ़ने की ताकीद की— 'सुब्हानल्लाह'— 33 बार, 'अलहम्दुलिल्लाह'— 33 बार और 'अल्लाहु अकबर'— 34 बार । (ये कलिमे 'तसबीहे फ़ातिमा' के नाम से मशहूर हैं ।)

हज़रत असमा (रज़ि०)

हज़रत असमा (रज़ि०) उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) की बड़ी बहन थीं । हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) की बेटी थीं और हज़रत ज़ुबैर (रज़ि०) को ब्याही थीं । बचपन ही से इस्लाम की राह में तेज़ी से चल रही थीं । हज़रत ज़ुबैर (रज़ि०) भी ग़रीब थे । हज़रत असमा ही घर का सारा काम ख़ुद करती थीं । मदीने के बाहर उनका एक बाग़ था । बाग़ तक पैदल जातीं और काम करतीं । वह मशहूर और दिलचस्प वाक़िआ याद होगा कि एक बार वे सामान से लदी आ रही थीं । रास्ते में हुज़ूर (सल्ल०) मिले । कुछ सहाबा (रज़ि०) साथ थे । आपने हज़रत असमा (रज़ि०) की मेहनत और मशक़्क़त को देखा तो अपना ऊँट पेश किया, लेकिन हज़रत असमा (रज़ि०) ने उस पर बैठना पसन्द नहीं किया और पैदल ही घर आईं ।

हज़रत ज़ुबैर (रज़ि०) के मिज़ाज में बड़ी तेज़ी थी । लेकिन हज़रत असमा (रज़ि०) बड़े सब्र के साथ रहती थीं । उस बरदाश्त पर ताज्जुब उस वक़्त होता है जब हम देखते हैं कि एक बार हज़रत ज़ुबैर (रज़ि०) की तेज़ मिज़ाजी से ऐसा हुआ कि उन्होंने तलाक़ दे दी । तलाक़ के बाद बीवी की नज़र से शौहर गिर जाता है । लेकिन हज़रत असमा (रज़ि०) उनकी बहुत-सी अच्छाइयों की वजह से हमेशा उनकी तारीफ़ करती रहीं । यहाँ तककि जब एक दुश्मन ने धोखा देकर शहीद कर दिया तो उन्होंने एक दर्दनाक मर्सिया कहा जिसमें यह भी कहा—

"वह (ज़ुबैर) इतना बहादुर था कि सामने से तलवार का वार करने

की तुझे हिम्मत नहीं हुई । हैरत है तुझ पर ! तूने उस वक़्त तलवार चलाई जब वह नमाज़ी (ज़ुबैर) सज्दे में था ।"

मशहूर बहादुर सहाबी हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि०) हज़रत असमा के बड़े बेटे थे । उनकी तरबियत हज़रत असमा ने की थी । जब वे पैदा हुए तो उन्हें हुज़ूर (सल्ल०) की ख़िदमत में ले गईं और उनसे दुआ कराई ।

उनके बचपन में कोई जंग होती तो हज़रत असमा (रज़ि०) उन्हें एक टीले पर बिठा देतीं और कहतीं, "देखो, यह सब !"

आज कहाँ गईं ऐसी औरतें । नाम आज भी असमा, आइशा, ख़दीजा और फ़ातिमा वग़ैरह हैं, लेकिन काम ?........काश कि........!

कुछ चुनी हुई घटनाएँ

- हज़रत हौला (रज़ि०) के शौहर जब घर आते तो वे दुलहन की तरह सज-धज कर उनका स्वागत करती थीं ।
- हज़रत उमर (रज़ि०) जब घर आते तो उनकी बीवी आतिका (रज़ि०) उनका सिर चूम लिया करती थीं ।
- तबूक की लड़ाई के मौक़े पर किसी भूल की वजह से हुज़ूर (सल्ल०) हिलाल बिन उमैया (रज़ि०) से नाराज़ हो गए । हुक्म दे दिया कि बीवियाँ उनसे अलग रहें । उस मौक़े पर हज़रत हिलाल की बीवी हुज़ूर (सल्ल०) की सेवा में हाज़िर हुईं । अर्ज़ किया— "ऐ अल्लाह के रसूल ! हिलाल बूढ़े हैं, मेरे सिवा उनके पास कोई ख़िदमत करनेवाला नहीं । अगर मैं सिर्फ़ उनकी ख़िदमत करूँ, तो आपको नापसन्द तो नहीं होगा ।" फ़रमाया— "नहीं, लेकिन अलग रहना ।"
- पचास दिन तक हुज़ूर नाराज़ रहे । बीवी ने हिलाल की सेवा इस तरह की कि रहीं तो उनसे अलग लेकिन उनको तकलीफ़ न होने दी ।
- इसी तरह एक सहाबी (रज़ि०) ने बुढ़ापे में एक बार बीवी को माँ कह दिया । उन पर ज़िहार[1] का मसला लागू हो गया तो वफ़ादार बीवी हुज़ूर (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और ऐसे दर्दनाक शब्दों में शौहर की मजबूरी पेश की कि अल्लाह तआला का हुक्म उनके हक़ में आया । सूरा मुजादला ऐसी ही हालत में उतरी ।

---

1. इस्लाम में मर्द का अपनी बीवी को माँ या बहन या उन औरतों से मुशाबहत करना जो इस्लामी तौर-तरीक़े से उसपर हराम हैं, ज़िहार कहलाता है ।

मिली-जुली ख़ूबियाँ

सहाबियात (रज़ि०) यानी पाकीज़ा औरतों पर वह ज़माना भी गुज़रा जब इस्लाम का इब्तिदाई दौर था और वे उस वक़्त दाने-दाने को मुहताज हो गई थीं। फिर वह वक़्त भी आया जब अल्लाह ने उन्हें नजात दी। दोनों हालतों में उन्होंने अपनी सादगी को न छोड़ा। दोनों हालतों के नमूने देखिए—

- सहाबियात (रज़ि०) सादा ज़ेवर पहनती थीं। ज़्यादा से ज़्यादा बाज़ूबन्द, बाली, हार, अंगूठी और छल्ले। हार लौंग का होता था।
- सहाबियात (रज़ि०) सुरमा और मेंहदी लगाती थीं। ज़ाफ़रान और इत्र को पसन्द करती थीं।
- तमाम सहाबियात (रज़ि०) अपना काम ख़ुद करती थीं। कुछ सहाबियात कपड़ा बुनती थीं, कुछ चमड़े का काम करती थीं। अगर किसी के घर लौण्डी होती तो उसके साथ ख़ुद भी काम करती थीं।

आज भी इन नमूनों से सबक़ लिया जा सकता है। सुकून की तलाश है तो इन नमूनों को सामने रखा जाए।